यूनियन स्वर्ण धारा

यूनियन धारा के स्वर्ण जयंती वर्ष – 2025

के अवसर पर प्रकाशित कहानी संग्रह

यूनियन धारा

यूनियन बैंक ऑफ इंडिया
अच्छे लोग, अच्छा बैंक

Union Bank of India
Good people to bank with

यूनियन स्वर्ण धारा

कॉर्पोरेट गृह पत्रिका यूनियन धारा के स्वर्ण जयंती वर्ष – 2025
के अवसर पर प्रकाशित कहानी संग्रह

संरक्षक

ए. मणिमेखलै
प्रबंधक निदेशक एवं सीईओ

मार्गदर्शन

- **नितेश रंजन**
  कार्यपालक निदेशक
- **रामसुब्रमणियन एस.**
  कार्यपालक निदेशक
- **संजय रुद्र**
  कार्यपालक निदेशक
- **पंकज द्विवेदी**
  कार्यपालक निदेशक

संपादकीय सलाहकार

- **चन्द्र मोहन मिनोचा**
  मुख्य महाप्रबंधक (मा.सं.)
- **गिरीश चंद्र जोशी**
  महाप्रबंधक (मा.सं. एवं रा.भा.)
- **विवेकानंद**
  सहायक महाप्रबंधक (रा.भा.)

संपादक

गायत्री रवि किरण
मुख्य प्रबंधक (रा.भा.)

संपादन सहयोग

जागृति उपाध्याय
सहायक प्रबंधक (रा.भा.)

प्रकाशन तिथि
15.02.2025

मुद्रक
सॅप प्रिंट सोल्युशन्स प्रा. लि.

अस्वीकरण *- 'यूनियन स्वर्ण धारा' नामक यह पुस्तक पूरी तरह से आंतरिक परिचालन हेतु प्रकाशित की गई है. इसमें बैंक की कॉर्पोरेट गृह पत्रिकाओं में प्रकाशित कहानियों में से चुनिंदा कहानियों का संकलन पुन: प्रकाशित किया गया है. इनमें व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं और प्रबंधन का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है.*

यूनियन बैंक ऑफ इंडिया
अच्छे लोग, अच्छा बैंक
Union Bank of India
Good people to bank with

यूनियन धारा, राजभाषा कार्यान्वयन प्रभाग, मानव संसाधन विभाग,
केंद्रीय कार्यालय, 239, विधान भवन मार्ग, नरीमन पाइंट, मुंबई.

यूनियन बैंक ऑफ इंडिया
अच्छे लोग, अच्छा बैंक

Union Bank of India
Good people to bank with

ए. मणिमेखलै
एमडी एवं सीईओ

प्रिय यूनियनाइट्स,

सर्वप्रथम यूनियन धारा के स्वर्ण जयंती वर्ष के उपलक्ष्य में हार्दिक बधाई और शुभकामनाएँ. प्रकाशन उत्कृष्टता के पचास वर्ष गृह पत्रिका की गुणवत्ता, अखंडता और पाठक जुड़ाव के प्रति अटूट प्रतिबद्धता को प्रदर्शित करते हैं. बैंक की कॉर्पोरेट गृह पत्रिकाएं, सूचना का एक विश्वसनीय स्रोत एवं कार्मिकों की वाणी के लिए एक प्रभावशाली मंच प्रदान करती हैं. गृह पत्रिकाओं के लेखक वर्ग, सुधि पाठकगण तथा संपादकीय टीम के अथक प्रयासों ने इस उपलब्धि को संभव बनाया है.

बैंक की कॉर्पोरेट गृह पत्रिकाओं ने अपनी गौरवशाली यात्रा में अनेक पुरस्कार प्राप्त किए हैं. वर्ष 2012-13 में यूनियन धारा को इंदिरा गांधी राजभाषा पुरस्कार प्राप्त हुआ. यूनियन सृजन को वर्ष 2014-15 हेतु और पुन: 2018-19 हेतु कीर्ति पुरस्कार प्राप्त हुआ. भारतीय रिज़र्व बैंक से भी उत्कृष्ट गृह पत्रिका के पुरस्कार प्राप्त हुए हैं. वर्ष 1987 से एसोसिएशन ऑफ बिजिनेस कम्यूनिकेटर्स ऑफ इंडिया से यूनियन धारा को "मैगज़ीन ऑफ द इयर", "चैंपियन ऑफ चैंपियन्स" सहित अनेक पुरस्कार प्राप्त हुए हैं. इसी प्रकार गृह पत्रिकाओं को पब्लिक रिलेशन्स काउंसिल ऑफ इंडिया, आशीर्वाद, मायाराम सुरजन, शैलजा फाउंडेशन और अन्य निजी संगठनों से लगातार पुरस्कार प्राप्त हुए हैं. ये पुरस्कार दोनों पत्रिकाओं की गुणवत्तापूर्ण एवं मौलिक विषय-वस्तु, आकर्षक कलेवर, वैविध्यपूर्ण विशेषांक और प्रामाणिक प्रकाशन के मान्यता स्वरूप प्राप्त हुए हैं.

कारोबार विकास हेतु उच्च प्रबंधन की विचारधारा को शाखाओं में पदस्थ स्टाफ तक पहुंचाना और कर्मचारियों की सृजनात्मकता को पल्लवित करने की दोहरी भूमिकाएं इन गृह पत्रिकाओं द्वारा निभाई जा रही हैं. संस्थागत संवाद स्थापित करना गृह पत्रिकाओं का मुख्य उद्देश्य होता

है. साथ ही दैनिक कार्यों में जुटे कार्मिकों के विभिन्न भावनाओं और संवेदनाओं को उजागर करना भी एक महत्वपूर्ण दायित्व है. पिछले पाँच दशकों में, बैंक की कॉर्पोरेट गृह पत्रिकाओं के माध्यम से हमें ऐसी कहानियाँ पढ़ने का अवसर मिला है, जिन्होंने हमें जागृत और प्रेरित किया है.

स्वर्ण जयंती वर्ष के उपलक्ष्य में गृह पत्रिकाओं के अतीत से कुछ पन्नों को संजोते हुए प्रकाशित **'यूनियन स्वर्ण धारा'** बैंक की कॉर्पोरेट गृह पत्रिकाओं की लंबी यात्रा से जुड़े सभी कार्मिकों के प्रति आभार व्यक्त करने की एक अनोखी पहल है. इस संकलन के प्रकाशन हेतु मैं यूनियन धारा टीम का अभिनंदन करती हूँ. मैं आशा करती हूँ कि कार्मिकों की सृजनात्मकता से बैंक की सुसंपन्न सांस्कृतिक धरोहर का पोषण होता रहेगा.

शुभकामनाओं सहित,

(ए.मणिमेखलै)

यूनियन बैंक ऑफ इंडिया
अच्छे लोग, अच्छा बैंक

Union Bank of India
Good people to bank with

नितेश रंजन
कार्यपालक निदेशक

प्रिय यूनियनाइट्स,

बैंक की प्रतिष्ठित गृह-पत्रिका, यूनियन धारा की स्वर्ण जयंती वर्ष के उपलक्ष्य पर हार्दिक बधाई. प्रकाशन उत्कृष्टता के पाँच दशक एक उल्लेखनीय उपलब्धि है. हमारे बैंक की गृह पत्रिकाएं सदैव ही स्टाफ सदस्यों के लिए सूचना, प्रेरणा और ज्ञानवर्धन का एक स्रोत रही हैं. गुणवत्तापूर्ण पत्रकारिता के प्रति समर्पण और विविध दृष्टिकोणों को प्रदर्शित करने की प्रतिबद्धता से बैंक की गृह पत्रिकाओं ने एक विशेष स्थान अर्जित किया है. सफलता और निरंतर उत्कृष्टता के कई और वर्षों के लिए शुभकामनाएँ.

मुझे प्रसन्नता है कि बैंक की गृह पत्रिका यूनियन धारा की स्वर्ण जयंती के इस महत्वपूर्ण पड़ाव पर **'यूनियन स्वर्ण धारा'** कहानी संग्रह का प्रकाशन किया जा रहा है. इस कहानी संग्रह का प्रत्येक पृष्ठ प्रेरक कहानियों, विचारोत्तेजक सामग्री और आश्चर्यजनक प्रसंगों से भरा है. यह संकलन शब्दों की शक्ति और मानवीय अनुभव की विविधता का प्रमाण है. **'यूनियन स्वर्ण धारा'** की कहानियाँ, हमारी दैनिक जीवन की जटिलता और सुंदरता को दर्शाती हैं. हम जैसे-जैसे इन पन्नों को पलटते हैं हमें परिचित और अनजान दोनों आवाज़ें मिलती हैं, जो कि प्रत्येक मानवीय स्थिति पर एक अनूठा दृष्टिकोण प्रस्तुत करती हैं. इन कहानियों के पात्र हमारी पूर्वधारणाओं को चुनौती देते हैं और उन्नति के लिए प्रेरित करते हैं. यह संकलन लिखित शब्द और मानवीय भावना की असीम रचनात्मकता का संग्रह है, जो हमें एहसास कराता है कि प्रत्येक परिस्थिति और कठिन समय में भी, आशा, सुंदरता और परिवर्तन की संभावना बनी रहती है. मुझे उम्मीद है कि पाठकों को इन पन्नों में प्रेरणा और खुशी मिलेगी.

उच्च-गुणवत्ता वाली सामग्री प्रदान करने के प्रति समर्पण, विभिन्न दृष्टिकोणों को प्रदर्शित करने, नए विचारों की खोज करने और रचनात्मकता को बढ़ावा देने के प्रति प्रतिबद्धता किसी भी प्रकाशन के संबंध में पूर्वापेक्षाएं हैं. मैं आशा करता हूँ कि बैंक की गृह पत्रिकाओं के माध्यम से स्टाफ सुसंगत जानकारी और नवोन्मेषी विचारों का आदान-प्रदान करते हुए बैंक के कारोबार की विकास यात्रा में एक नई उर्जा भरेंगे. मेरा विश्वास है कि गृह पत्रिकाओं के माध्यम से कहानी कहने की सीमाओं को आगे बढ़ाने और उभरती आवाज़ों के लिए एक मंच प्रदान करने के सार्थक प्रयास जारी रहेंगे. मैं आने वाले वर्षों में गृह पत्रिकाओं की निरंतर सफलता, विकास और उत्कृष्टता की कामना करता हूँ.

शुभकामनाओं सहित,

(नितेश रंजन)

यूनियन बैंक ऑफ इंडिया
अच्छे लोग, अच्छा बैंक

Union Bank of India
Good people to bank with

रामसुब्रमणियन एस.
कार्यपालक निदेशक

प्रिय यूनियनाइट्स,

यूनियन धारा गृह-पत्रिका के पाँच दशक दृढ़ता, नवाचार और समर्पण की एक उल्लेखनीय यात्रा है. सभी रचनाकारों और पाठकों को स्वर्ण जयंती वर्ष की हार्दिक बधाई. बैंक की गृह पत्रिकाओं ने लेखन की सीमाओं में विस्तार किया है, बैंकिंग विषयों के साथ-साथ सामाजिक, सांस्कृतिक तथा भौगोलिक विशेषताओं के विशेषांक तैयार किए हैं और लेखन की विभिन्न विधाओं से पाठकों का परिचय कराया है. कॉर्पोरेट गृह पत्रिकाएं अपने पाठकवर्ग को जानकारी के साथ सामान्य रुचि और सृजनात्मकता के तत्वों को भी जोड़ते हुए बैंक के सांस्कृतिक तथा सृजनात्मक परिदृश्य का एक अभिन्न अंग बन गई हैं. अत: स्वर्ण जयंती वर्ष के उपलक्ष्य में गृह पत्रिकाओं के सृजनात्मक पक्ष को दर्शाते हुए **'यूनियन स्वर्ण धारा'** कहानी संग्रह का प्रकाशन एक सराहनीय पहल है.

कहानियाँ मानव जीवन की तमाम पहलुओं का चित्रण होती हैं, जो हमें प्रेरणा देती हैं और सभी को जोड़ने की क्षमता रखती हैं. कहानियों के माध्यम से, हम अपने अनुभव, संस्कृति और मूल्यों को साझा करते हैं. ये हमें अलग-अलग परिवेशों में ले जाने, हँसाने-रुलाने और हमारे दृष्टिकोण को प्रभावित करने में सक्षम होती हैं. ये हमारे अंदर नए सपने और नई उम्मीद जगाती हैं.

बैंक की गृह पत्रिकाएं अनगिनत स्टाफ सदस्यों के लिए प्रेरणा, शिक्षा और मनोरंजन का स्रोत रही हैं और बैंक के स्टाफ सदस्यों पर इनका प्रभाव निर्विवादित है. रचना की शैली, विषय-वस्तु और रचनात्मकता के अनूठे मिश्रण से लेखक अपने पाठकों के मन में स्थान बना लेते हैं. साथ ही साहित्यिक रचनाएं तकनीकी विषयों में भी मानवीय पक्ष को उजागर कर पाती हैं. **'यूनियन स्वर्ण धारा'** में प्रकाशित कहानियों में हमें बैंकिंग संकल्पनाओं का व्यावहारिक पक्ष देखने को मिलता

है. बदलते समय के साथ तालमेल बिठाने, सीमाओं को लांघने और नवोन्मेष की क्षमता से ऐसी रचनाओं की प्रासंगिकता प्रमाणित होती है.

मुझे आशा है कि पाठक इस पुस्तक में प्रकाशित कहानियों में स्वयं को चित्रित कर पाएंगे और प्रभावशाली लेखन शैली को विकसित कर, स्वयं भी निपुण लेखन कार्य करने के लिए प्रेरित होंगे. मैं आने वाले वर्षों में गृह-पत्रिकाओं के निरंतर विकास और सफलता की कामना करता हूँ. मुझे बैंक की गृह पत्रिकाओं में आकर्षक सामग्री और विचारोत्तेजक विषयों को सरल भाषा और शैली में प्रस्तुत करनेवाले लेखों की प्रतीक्षा रहेगी.

शुभकामनाओं सहित,

एस राम

(रामसुब्रमणियन एस.)

यूनियन बैंक ऑफ इंडिया
अच्छे लोग, अच्छा बैंक

Union Bank of India
Good people to bank with

संजय रुद्र
कार्यपालक निदेशक

प्रिय यूनियनाइट्स,

यूनियन धारा के स्वर्ण जयंती वर्ष के इस अवसर पर मैं यूनियन धारा की पाँच दशकों की यात्रा से जुड़े सभी कार्मिकों के प्रति हार्दिक प्रशंसा और सराहना व्यक्त करना चाहूँगा. बैंक की गृह पत्रिकाओं की उल्लेखनीय यात्रा कहानी कहने की शक्ति, गुणवत्तापूर्ण प्रकाशन के महत्व और समर्पित टीमवर्क के प्रभाव का परिणाम है. पिछले पाँच दशकों में, बैंक की कॉर्पोरेट गृह पत्रिकाएं सरकारी दिशानिर्देशों का अनुपालन करते हुए विकसित हुई हैं, अनुकूलित हुई हैं और नवाचार करती रही हैं. सफलता और निरंतर उत्कृष्टता की इस सुदीर्घ यात्रा में बैंक की कॉर्पोरेट गृह पत्रिकाओं ने वैविध्यपूर्ण लेख, कविताएं, साक्षात्कार आदि के माध्यम से अपने पाठकवर्ग को अविस्मरणीय अनुभव प्रदान किया है.

जहाँ एक ओर बैंक की गृह पत्रिकाओं में प्रकाशित बैंकिंग विषय से संबंधित लेखों ने कार्मिकों को विश्वसनीय पठन सामग्री उपलब्ध करवाया है तो दूसरी ओर साहित्यिक और सामान्य रुचि के लेखों आदि के माध्यम से मानसिक आह्लाद भी प्रदान किया है. कॉर्पोरेट गृह पत्रिकाएं बैंक की गतिविधियों के साथ-साथ विभिन्न स्तंभों के माध्यम से कार्मिकों और उनके परिवार के निजी उपलब्धियों की भी साक्षी बनी हैं.

यूनियन धारा के प्रकाशन के स्वर्ण जयंती वर्ष के उपलक्ष्य में **'यूनियन स्वर्ण धारा'** के अंतर्गत प्रकाशित कहानियों से हमें पिछले पाँच दशकों में बैंक की कॉर्पोरेट गृह पत्रिकाओं के माध्यम से कार्मिकों की सृजनात्मक प्रतिभा की एक झलक देखने को मिलती है. कहानियों में हमारे सबसे गहरे अनुभवों और आंतरिक आवाज़ के साथ प्रतिध्वनित होने की गहन क्षमता होती है. **'यूनियन स्वर्ण धारा'** में संकलित कहानियां भी हमारे स्टाफ सदस्यों में स्फूर्ति भरेंगी और उनकी अंतर्चेतना को विकसित करेंगी. परिणामतः वे अपनी संस्था को उपलब्धियों के नए शिखर पर स्थापित करने के लिए तत्पर होते हैं.

मैं आशा करता हूँ कि कहानी लेखन के इस प्रभावशाली माध्यम को और अधिक स्टाफ सदस्य अपनाएँगे और अपने सुसमृद्ध अनुभव को रोचक शब्दों के माध्यम से पाठकों के सामने प्रस्तुत करने का प्रयास अवश्य करेंगे. मुझे आशा है कि बैंक के कार्मिकों में पठन-पाठन की परंपरा निरंतर बनी रहेगी, जिससे बैंकिंग में कुशलता के साथ-साथ मानवीय पक्ष को जाड़ते हुए बैंक के छवि-निर्माण और प्रगति का मार्ग प्रशस्त होगा.

शुभकामनाओं सहित,

संजय रुद्र

(संजय रुद्र)

यूनियन बैंक ऑफ इंडिया
अच्छे लोग, अच्छा बैंक

Union Bank of India
Good people to bank with

पंकज द्विवेदी
कार्यपालक निदेशक

प्रिय यूनियनाइट्स,

यूनियन धारा के स्वर्ण जयंती वर्ष के उपलक्ष्य में मुझे हार्दिक बधाई और शुभकामनाएँ देते हुए बहुत खुशी हो रही है. प्रकाशन के पचास वर्ष, बैंक की कॉर्पोरेट गृह पत्रिका के स्थायी अपील और प्रासंगिकता का प्रमाण है. कॉर्पोरेट गृह-पत्रिकाएं संस्थागत संवाद को आकार देने, वैचारिक सोच को बढ़ावा देने और रचनात्मक प्रतिभा को प्रदर्शित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं. हमारे बैंक की कॉर्पोरेट गृह पत्रिकाएँ इन सभी मानकों पर उत्कृष्टता के एक प्रकाश स्तंभ के रूप में स्थापित हुई हैं. यूनियन धारा टीम की कड़ी मेहनत और गुणवत्ता के प्रति प्रतिबद्धता ने इस उपलब्धि को संभव बनाया है.

स्वर्ण जयंती वर्ष के इस महत्वपूर्ण मील के पत्थर के स्मारक स्वरूप कहानी संग्रह **'यूनियन स्वर्ण धारा'** का प्रकाशन एक हर्ष का विषय है. कहानियों में हमारी सांस्कृतिक पहचान को आकार देने, हमारी सामाजिक वास्तविकताओं को प्रतिबिंबित करने तथा हमारे मानदंडों और धारणाओं को चुनौती देने की शक्ति होती है. इनके माध्यम से, हम अपने और दूसरों के बारे में सीखते हुए सहानुभूति, करुणा और समझ को बढ़ाते हैं. पिछले पाँच दशकों की सुदीर्घ अवधि के दौरान अलग-अलग स्टाफ सदस्यों की भावनाओं और विचारों से उपजी कहानियां व्यक्ति विशेष के साथ-साथ संस्थागत संस्कृति की झलक भी दिखाती हैं. कहानियाँ हमें सकारात्मक बदलाव को बढ़ावा देने और अधिक न्यायपूर्ण और समतावादी समाज की दिशा में काम करने के लिए प्रेरित करती हैं. इस संकलन के माध्यम से ऐसी ही चुनिन्दा कहानियों को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है.

आइए, हम इन कहानियों से प्रेरणा लेते हुए अपने अनुभव और विचारों को शब्दों में पिरोने की क्षमता बढ़ाएं. इससे बैंक के नए कार्मिकों को अपने से वरिष्ठ साथियों के अनुभव और ज्ञान से मार्गदर्शन प्राप्त करने का अवसर प्राप्त होगा साथ ही युवा पीढ़ी को अपनी नवोन्मेषी विचारधारा व्यक्त करने का प्रोत्साहन मिलेगा. इस प्रकार बैंक की वैचारिक संस्कृति की सर्वतोमुखी उन्नति होगी. अंतत: यह सक्रिय संवाद बैंक के कारोबार विकास और ग्राहक आधार की बढ़ोत्तरी में सहायक होगा. मुझे आशा है कि कॉर्पोरेट गृह पत्रिकाओं के आगामी अंकों में नए कथाकारों की रचनाओं को पढ़ने का मौका मिलेगा.

शुभकामनाओं सहित,

(पंकज द्विवेदी)

यूनियन बैंक ऑफ इंडिया
अच्छे लोग, अच्छा बैंक

Union Bank of India
Good people to bank with

चन्द्र मोहन मिनोचा
मुख्य महाप्रबंधक (मा. सं.)

प्रिय यूनियनाइट्स,

मुझे प्रसन्नता है कि यूनियन धारा की स्वर्ण जयंती वर्ष के उपलक्ष्य में **'यूनियन स्वर्ण धारा'** नाम से कहानी संग्रह का प्रकाशन किया जा रहा है. यह प्रकाशन हमारे स्टाफ सदस्यों की सृजनात्मकता को प्रतिबिंबित करता है.

बैंक में प्रबंधन तंत्र और स्टाफ सदस्यों के बीच संवाद सेतु के रूप में कार्पोरेट गृह पत्रिकाओं की अहम भूमिका है. बैंक की दोनों कार्पोरेट गृह पत्रिकाएं- यूनियन धारा और यूनियन सृजन के माध्यम से बैंकिंग जगत से संबंधित अद्यतन जानकारी, नई संकल्पनाओं से संबंधित व्याख्यात्मक लेख और स्टाफ की विचारधारा को लेखों के रूप में प्रस्तुत किया जाता है. साथ ही दोनों गृह पत्रिकाओं में रुचिकर लेख प्रकाशित किए जाते हैं, जो पाठकों को बैंकिंग से इतर भी नित-नूतन विषयों से परिचित करवाते हैं.

जानकारी से परिपूर्ण, मौलिक, पठनीय और वैविध्यपूर्ण विषय-वस्तु यथा – साहित्यकारों का परिचय, साक्षात्कार, पुस्तक समीक्षा, कविताएं, फोटो फीचर, यात्रा वृत्तांत आदि., से कार्पोरेट गृह पत्रिकाओं की गुणवत्ता का प्रमाण मिलता है. गृह पत्रिकाओं में स्टाफ सदस्यों द्वारा लिखी गई कहानियों को भी समय-समय पर प्रकाशित किया गया है. गृह पत्रिकाओं के लेखकवर्ग में सेवानिवृत्त स्टाफ भी शामिल हैं, जो पाठकों के साथ अपना अनुभव साझा करते हैं. साहित्यिक सृजनात्मकता न केवल लेखक की बौद्धिक तीक्ष्णता बढ़ाती है बल्कि पाठक को भी अपनी दिनचर्या से भिन्न परिवेश का आनंद लेने का अवसर प्रदान करती है.

साहित्य के माध्यम से सामाजिक परिस्थितियों का परिचय मिलता है. मानव जीवन पर समय और परिस्थितियों का असर यदि समझना हो तो तत्कालीन साहित्य से बेहतर कोई दूसरा माध्यम नहीं है. इस संकलन में प्रकाशित कहानियों में मानव जीवन की अलग-अलग घटनाओं के आधार पर लिखी गई कहानियों में व्यंग्य, हास्य के साथ-साथ संवेदनशीलता और

व्यक्तिगत आचार-व्यवहार के अच्छे-बुरे और कभी-कभी आश्चर्यजनक पहलुओं की झलक भी है. इस संकलन के प्रकाशन से स्टाफ सदस्यों में उत्साह का संचार होगा और कारोबार हेतु सकारात्मक वातावरण बनेगा.

मैं यूनियन धारा की टीम को इस पुस्तक के संकलन और संपादन हेतु हार्दिक बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि यह पुस्तक बैंक के स्टाफ सदस्यों को अपनी भावनाओं को व्यक्त करने हेतु प्रेरित करेगी और गृह पत्रिकाओं के आगामी अंकों में हमें रोचक कृतियों को पढ़ने का अवसर मिलेगा.

शुभकामनाओं सहित,

चन्द्र मोहन मिनोचा

(चंद्र मोहन मिनोचा)

यूनियन बैंक ऑफ इंडिया
अच्छे लोग, अच्छा बैंक

Union Bank of India
Good people to bank with

प्रस्तावना

गिरीश चंद्र जोशी
महाप्रबंधक (मा.सं. एवं रा.भा.)

प्रिय यूनियनाइट्स,

मुझे अत्यंत प्रसन्नता है कि यूनियन धारा की स्वर्ण जयंती वर्ष के इस महत्वपूर्ण पड़ाव पर गृह पत्रिकाओं में प्रकाशित कहानियों का संकलन **'यूनियन स्वर्ण धारा'** का प्रकाशन किया जा रहा है. इस संकलन में गृह पत्रिकाओं के विभिन्न अंकों में प्रकाशित चुनिंदा कहानियों को स्थान दिया गया है.

बैंकिंग और समसामयिक विषयों का समाहार पाठकवर्ग के समक्ष प्रस्तुत करते हुए आगे बढ़ रही गृह पत्रिकाओं की यात्रा का हिस्सा बनना मेरे लिए गर्व का विषय है. गृह पत्रिकाओं के स्वरूप की संकल्पना से लेकर वास्तविक मुद्रण तक की यात्रा में कई सह-यात्री शामिल हैं. लेखकों, संपादकीय सलाहकारों और संपादकों के सम्मिलित प्रयासों से गृह पत्रिकाओं के सुदीर्घ इतिहास की रचना की गई है.

बैंक की कॉर्पोरेट गृह पत्रिका यूनियन धारा का प्रकाशन 1976 से प्रारंभ हुआ. इस यात्रा में 2025 एक महत्वपूर्ण पडाव है, जो गृह पत्रिका के प्रकाशन का स्वर्ण जयंती वर्ष है. आंतरिक संवाद के सशक्त माध्यम के रूप में, अर्ध-शताब्दी की सुदीर्घ कालावधि से यूनियन धारा बैंक के विकास की साक्षी बनी है. इसी प्रकार कर्मचारियों के विचार, अनुभव, सृजनात्मकता की ओजस्वी मुखरित वाणी को भी यूनियन धारा के अंतर्गत एक कारगर मंच मिला.

16 पृष्ठों के श्वेत-श्याम प्रकाशन के रूप में प्रारंभ होकर वर्तमान में 80+4 पृष्ठों की पूर्णत: रंगीन प्रकाशन के रूप में आकर्षक कलेवर, साज-सज्जा, रंगीन प्रकाशन, स्थायी स्तंभ और बढ़ती हुई पृष्ठ संख्या के साथ एक प्रतिष्ठित गृह पत्रिका के रूप में यूनियन धारा ने बैंकिंग उद्योग में ही नहीं बल्कि कार्पोरेट गृह पत्रिकाओं में भी अपना स्थान बनाया. वर्ष 2014 में राजभाषा कार्यान्वयन प्रभाग द्वारा यूनियन सृजन का प्रकाशन प्रारंभ हुआ, जिसमें राजभाषा

कार्यान्वयन, बैंक में राजभाषा के बढ़ते प्रयोग और विभिन्न कार्यालयों में राजभाषा गतिविधियों को कवर किया जाता है. वर्तमान में यह 56+4 पृष्ठों की पूर्णत: रंगीन प्रकाशन है.

यूनियन धारा और यूनियन सृजन को भारत सरकार, भारतीय रिज़र्व बैंक और अनेक प्रतिष्ठित निजी संस्थाओं से उत्तम गृह पत्रिकाओं के रूप में पहचान और सम्मान मिला है. ये पुरस्कार दोनों पत्रिकाओं की गुणवत्तापूर्ण एवं मौलिक विषय-वस्तु, आकर्षक कलेवर, वैविध्यपूर्ण विशेषांक और प्रामाणिक प्रकाशन के मान्यता स्वरूप प्राप्त हुए हैं. मुझे विश्वास है कि बैंक के स्टाफ सदस्य अपनी सृजनात्मकता से कार्पोरेट गृह पत्रिकाओं की गौरव गाथा को आगे बढ़ाएंगे.

शुभकामनाओं सहित,

(गिरीश चंद्र जोशी)

अनुक्रमणिका

क्र. सं	कहानी	लेखक	पृष्ठ संख्या
1.	बोध कथा	मनीष शंकर	1
2.	श्रीमती कावेरी	विद्या भिमराव कदम	3
3.	वृद्धाश्रम	नम्रता नायक	7
4.	गुजराती झूला	ललित कपूर	10
5.	ऐ री मैं तो प्रेम दीवानी	आर.के. त्यागी	17
6.	बिरजू	राम गोपाल सागर	21
7.	सांझ ढले	शिल्पा शर्मा सरकार	23
8.	मन की सुंदरता	संतोष श्रीवास्तव	28
9.	जिंदगी इतनी आसान कहां	अमित महतो	33
10.	प्रेम और ज्ञान	सुप्रिया सिंह	36
11.	पागल कहीं का !	प्रदीप सिंह	37
12.	औरत ही गढ़ती है...	प्रीति साव	42
13.	कोरोना काल के अनुभव : खट्टे – मीठे	बबली सिंह	44
14.	यादों में बचपन – स्वप्न	अभिषेक राज	46
15.	माँ नहीं आयेगी	अमित शर्मा	49
16.	सीख जिंदगी की	स्मिता राहुल डाबरे	52
17.	सॉरी सर	राजीव यादव	56
18.	सर्किट काका	राजकुमार कोरी	60
19.	एक मौन संवाद	रतन कुमार सिंह	67
20.	अंतिम स्मृति	कीर्ति शुक्ला	71
21.	मास्टर कलयाणनाथ	सुमित गर्ग	73
22.	सच्चा सौदा	मोहित मिश्रा	76
23	अंतिम सीख	रजनी शर्मा	79
24.	मूछें	कंवर भान चावला	83
25.	सौदा	रमेश चन्द्र त्रिपाठी	86
26.	निर्णय	अर्पित जैन	90

यूनियन धारा

स्वर्णिम वर्ष

बोध कथा

(एक सत्य घटना)

बारिश का मौसम खत्म होने को था, मौसम साफ और सुहाना होने लगा था, मैं भी कुछ महीनों से घर से बाहर था. आने के बाद मेरी नज़र घर के अंदर की दीवार पर लगी एक तस्वीर पर पड़ी, जो मेरे कॉलेज के सहपाठियों ने भेंट-स्वरूप मुझे दी थी और जो काफी सुंदर एवं बड़ी भी थी. उसे मैंने कुछ कारीगरों की मदद से दीवार पर लगवाया था. मैंने देखा कि बारिश के कारण उसमें सीलन आने लगी थी. मैंने उन्हीं कारीगरों को बुलवा कर तस्वीर उतार कर ठीक करने को कहा, पर जैसे उन्होंने तस्वीर वाली फ्रेम उतारी, हम सब देख कर चौंक पड़े, क्योंकि हमारी नजरों ने जो नजारा देखा उफ्फ. . .! उस दर्द को हमारी अंतरात्मा ने भी महसूस किया, वो थी एक छिपकली जो दीवार पर फ्रेम के पीछे थी और हमें देख रही थी, लेकिन हिल नहीं सकती थी क्योंकि उसके पैर के बीचों-बीच ठुकी थी एक कील, जो इन्हीं में से किसी कारीगर ने एक साल पहले तस्वीर फ्रेम लगाते समय गलती से ठोकी थी.

कुछ समय बाद हमारे दर्द का एहसास आश्चर्य एवं कौतूहल में बदल गया, जब मेरे मुँह से अचानक निकला "हे भगवान". . . यह तो एक साल से ऐसे ही कष्ट में फंसी है. वो भी पैर में कील के साथ ओह. . . .! वो भी बिना कुछ खाये-पिये, पर यह जीवित कैसे है? अचानक यह प्रश्न हमारे मन में उठा. क्या यह कोई दैवीय चमत्कार है या उस तस्वीर का चमत्कार जिसके पीछे वो थी. अब हम सभी सारा काम छोड़कर अलग-अलग बातें सोचने लगे और साथ ही उसे सही तरीके से कैसे निकालें इस पर विचार करने लगे.

उसी समय हम सब की नज़र दीवार पर वापस गई और अरे. . अरे. . हम सबने लगभग एक साथ कहा क्योंकि कहीं से दूसरी छिपकली अपने मुँह में कुछ दबाए कील वाली छिपकली की तरफ दौड़ी आई और उसके मुँह में खाने को दिया. यह देखकर हमारे रोंगटे खड़े हो गए. हमें पता चल गया था कि उसका साल भर तक उस हालत में भी जिंदा रहना कोई दैवीय चमत्कार नहीं बल्कि आपसी प्रेम, बिना किसी उम्मीद के भी साथी के प्रति समर्पण और अदम्य साहस के कारण संभव हो सका था.

हमने बड़ी सावधानी से उस छिपकली को बंधन मुक्त किया. फिर क्या था दोनों छिपकलियां तेजी से दीवार के झरोखे की ओर दौड़ पड़ीं, जैसे जीत के बाद उमंग में उड़ी जा रही हों. पर दौड़ते- दौड़ते उन्होंने

कुछ समय बाद हमारे वो दर्द का एहसास आश्चर्य एवं कौतूहल में बदल गया, जब मेरे मुँह से अचानक निकला हे भगवान

पीछे मुड़कर हमें देखा. . . . मानों पूछ रही हों कि जब हम छोटे प्राणी बिना किसी उम्मीद के लगातार अपने साथी को स्नेह, सहयोग और मदद करते रह सकते हैं तो आप जैसे बड़े और अपने को बुद्धिमान कहने वाले मानुष क्यों छोटी-छोटी बातों और स्वयं पर घमंड के कारण अपने साथी को मुसीबत में छोड़कर अपने जीवन में मस्त हो जाते हैं और पलट कर देखते तक नहीं.

दोनों छिपकलियों के मौन में लतकार थी कि क्या तुम मानव ऐसा साथ दे सकते हो. अगर हिम्मत है तो कर के दिखाओ. . . . . एक साल में 50 मित्र बनाना आम बात है पर 50 साल तक एक ही मित्र से मित्रता निभाना खास है.

मनीष शंकर

■■■

"आपके यहाँ मेरा बचत खाता है. उसमें कुछ रकम है और यह नब्बे हजार का चेक." इतना कहकर बड़ी सावधानी से उसने पर्स में से चेक निकाला, चेक एल. आई. सी. का था, शायद एकाध पॉलिसी की शेष रकम थी.

श्रीमती कावेरी

सुबह के ग्यारह बजे थे. काउंटर पर भीड़ थी. पैसे का लेन-देन, चेक डिपाजिट आदि काम पूरा करने की कोशिश ग्राहक कर रहे थे.

इतने में एक महिला मेरे पास आ गयी, परेशान सा चेहरा मायूस लग रही थी. वह मेरे पास आकर बोली "मुझे पैसे जमा करने है और फिक्स में रखना चाहती हूँ." "कितनी रकम आपको फिक्स में रखनी हैं?" मैंने उनसे कहा, "एक लाख रुपए" उसने जवाब दिया.

मैंने उसकी तरफ गौर से देखा, पैंसठ अड़सठ साल की उम्र, चिंता से चेहरा सिकुड़ा हुआ, पुरानी मगर साफ सुथरी साड़ी पहनी थी. एक हाथ में पर्स पकड़े हुए वह सामने खड़ी थी. ढेर सारी आशंकाएं आँखो में लिए इधर-उधर देख रही थी.

"आपके यहाँ मेरा बचत खाता है. उसमें कुछ रकम है और यह नब्बे हजार का चेक." इतना कहकर बड़ी सावधानी से उसने पर्स में से चेक निकाला, चेक एल. आई. सी. का था, शायद एकाध पॉलिसी की शेष रकम थी.

"आपको ब्याज, रसीद की परिपक्वता के बाद चाहिए या आपको ब्याज मासिक अथवा त्रैमासिक चाहिए?" मैंने कावेरी जी से पूछा.

"मुझे फिक्स में पैसे रखने हैं." उसका जवाब था.

"हाँ जरूर आप फिक्स में पैसे रखो, मगर अलग-अलग प्रकार की डिपाजिट योजनाएँ हमारे बैंक में हैं." मैंने उन्हें समझाया, "अगर आपको मासिक या तीन महीने के बाद ब्याज चाहिए तो उसकी अलग स्कीम है. रोज के खर्च के लिए छोटी बड़ी रकम मदद के तौर पर काम आ सकती है." मैंने कावेरी जी को विस्तार से अलग-अलग प्रकार के डिपाजिट की जानकारी दी.

मुझे लगा शायद उम्र के हिसाब से यह काम नहीं करती होंगी, मगर उन्होंने बताया कि वह अब भी दो तीन घर में काम करती है, मैंने उन्हें मासिक ब्याज के अंतर्गत डिपाजिट करने को कहा, योजना का स्वरूप तथा कावेरी जी के लिए फायदेमंद ब्याज की दर, जो सीनियर सिटीजन के लिए है, वही उन्हें लागू किया. धीरे-धीरे सब बातें कावेरी जी के ध्यान में आ गयी. मैंने फॉर्म भरवाकर सब प्रोसीजर पूर्ण किया. उनको यह बात स्पष्ट की कि चेक क्लियर होने के बाद ही रसीद पूरी हो जाएगी. तीन दिन के बाद आप रसीद लेने जा सकती हैं, चेक की एक्नोलेजमेंट उन्हें सुपुर्द की.

फिर जाने के लिए वह खड़ी हो गयीं. मुख्य दरवाजे तक वह पहुँच गयीं. फिर किसी सोच से वहाँ से मुड़कर मेरे करीब आकर उन्होंने कहा "मेरे बेटे को मत बोलना कि मैंने यहाँ पैसे रखे हैं."

"कौनसा बेटा ? मुझे तो मालूम नहीं."

"यहाँ आता है उसका भी यहाँ बचत खाता है. मैं आपको विनती करती हूँ उसे कुछ भी बताना नहीं." मेरा हाथ पकड़कर फिर से बात दोहराई.

मैंने कहा "किसी भी गैर आदमी को किसी के खाते के बारे में हम जानकारी नहीं दे सकते हैं. बैंक के नियम के खिलाफ है. आप बिलकुल फिक्र मत करना, मैं विश्वास के साथ आपसे कहती हूँ आपके खाते की जानकारी आपके बेटे को नहीं दूंगी." तब भी उनकी आँखे आशंका से भयभीत थीं. चेहरे पर प्रश्नचिह्न उभर आया था "सचमुच मेरी पूंजी सुरक्षित रहेगी न?"

कावेरी जी के जाने के बाद मैं अस्वस्थ हो गयी. उनका डर, उनकी आशंका इसकी वजह क्या हो सकती है? चेक क्लियर होने के बाद मैंने कावेरी जी की रसीद बनवाई, मेरे हृदय का बोझ हलका हुआ. उनके भविष्य की चिंता थोड़ी सी कम हो सकी. एक हफ्ते के बाद हाँफते हुए कावेरी जी मेरे पास आ गयी. चेहरे पर तनाव की रेखाएँ, पसीने से लिप्त चेहरा, अपने रुमाल से पोछते हुए उन्होंने मुझसे सवाल किया- "वह आया था क्या? मेरा बेटा?" ..... . "नहीं" मैंने उत्तर दिया.

राहत की सांस लेते हुए कावेरी जी कुर्सी पर बैठ गयी, "मेरी रसीद हो गयी?"

मैंने कहा "रसीद तो कब की बन चुकी बस आपका ही इंतजार था." यह सुनकर वह थोड़ी मुस्कुरा गयी. पहली बार मैंने उनका मुस्कुराता चेहरा देखा.

"धन्यवाद" धीरे से कावेरी जी ने कहा.

"यह तो मेरा कर्तव्य है आप जैसे बुजुर्गों को किसी प्रकार की परेशानी न हो, इसलिए हम कोशिश करते हैं."

"क्या करूँ मैडम, गरीबी और बुढ़ापा साथ में हो तो और भी दुखदायक है."

मैंने चौककर देखा, आँखों में आए विवशता के आँसू, महत प्रयास से पलकों में रोक रही थी, "आपको कोई परेशानी तो नहीं है?"

"नहीं- नहीं तो." कहकर रसीद पर्स में रखकर मुझे धन्यवाद देते हुए कावेरी जी झट से निकल गयी. मुझे गिल्टी फीलिंग होने लगा. मैंने उनसे व्यक्तिगत पूछताछ की, इससे उनके दिल को ठेस तो नहीं लगी?

एक हफ्ते के बाद एक दिन नकदी लेनदेन बंद होने के आधे घंटे पहले कावेरी जी आ गयी.

"नमस्ते मैडम,"

"नमस्ते" हँसकर मैंने प्रति नमस्कार किया.

आज कावेरी जी शांत और निश्चल लग रही थी. "मैडम, आप मुझसे नाराज है?"

"नहीं," मैंने हंसकर कहा "मगर आप ऐसे क्यों पूछ रही हो?"

"उस दिन मैं बिना कहे निकल गयी, आपको बुरा लगा होगा."

"बिलकुल नहीं, मैंने सोचा शायद आप जल्दी में हैं."

फिर से बोलू या न बोलूँ, द्वंद्व उनके चेहरे पर दिखाई दिया, मगर वह कहने लगीं. "आज तक अपनी परेशानी मेरी मजबूरी किसी को नहीं बताई, मगर न जाने क्यों मुझे आपसे दिल खोलकर मन की बात कहने का जी कर रहा है."

बिलकुल निःसंकोच बोलीं. "मैंने यह जो एक लाख रूपए का डिपाजिट किया है. वह मेरे कष्ट की पूंजी है. पति के पश्चात दो छोटे बच्चों की जिम्मेवारी मेरी थी. मैं बहुत पढ़ी लिखी नहीं हूँ. इसलिए हर छोटा-मोटा काम शुरू किया. सुबह से शाम तक हाथ को कभी आराम नहीं मिला. बड़ी होने के बाद बेटी की शादी हो गयी, मगर बेटे ने शिक्षा अधूरी छोड़ दी तथा बुरे लड़कों की संगत में उसे शराब पीने की आदत लग गयी, शादी होने के बाद भी कोई काम नहीं किया. घरेलू काम करके जो कमाती उसी से घर का काम चलता. दिन-ब-दिन बेटे की पैसे की मांग बढ़ती गयी. एक दिन गुस्से में आकर उसे घर से अलग करवाया, अगर वह नेकी से थोड़ा भी काम करता और मेरा हाथ बटाता तो भी मैं आनंद

से सब सह लेती, मगर उसके दुर्गुणों से मेरा कष्टमय जीवन और भी दुखप्रद हो गया."

"मेरी कमाई पर उसकी नज़र है. घर आकर पैसे के बारे में बहुत तंग करता है. मैंने भविष्य के लिए थोड़ा-थोड़ा करके पैसे अलग रखे हैं. मुझे चिंता इस बात की है कि उसके व्यसन में यह पैसा व्यर्थ न हो जाए. इसीलिए मैंने पहले ही आपको बार-बार कहा कि किसी भी हालत में बेटे को इस बात का पता न चल जाए कि मैंने यहां डिपाजिट किया है, नहीं तो मेरा जीना मुश्किल हो जाएगा."

उनकी कहानी सुनकर मैं भी परेशान हो गयी. फिर भी आश्वासन के साथ मैंने उनसे कहा आप बिल्कुल निश्चिंत रहें.

कावेरी जी चली गयी, उनकी व्यथा से मैं अन्तर्मन में दुखी हो गयी. मन में बार-बार विचार आ रहे थे क्या यही जिंदगी है? माँ संतान को पाल पोसकर बड़ा करती हैं, उसके सपने, उसके भविष्य के बारे में सोचने, उसे पूरा करने के लिए जीवन की चुनौती स्वीकार करना, उसके जीवन का अविभाज्य अंग रहता है. धूप बारिश की परवाह न करते हुए पारिवारिक सुख के लिए यह संघर्ष करती रहती है. बहुत कम अपेक्षाएँ रखती है उसकी जिंदगी के बारे में. औरत सिर्फ यह सोचती है कि जितना हो सके, शरीर सबल हो, मैं कष्ट करूंगी, मगर बुढ़ापे में मैं सुख चैन की सांस लूँ. और यहाँ बुढ़ापा डर से कांप रहा है. उस डर में खुद की बेबसी, भविष्य की चिंता है जो स्नेहमय आश्वासन, सामंजस्यपूर्ण संवाद और रूखी-सूखी रोटी में भी आनंद से सुख-दुख बांटने वाली संतान की अपेक्षा करती है, जो सभी असहाय बुजुर्गों के कष्टप्रद जीवन की संजीवनी होगी, क्या यह सपना वास्तव में सच होगा.

मीठा सबसे बोलिये फैले सुख चहुँ ओर
वशीकरण है मंत्र यही तज दे वचन कठोर!

विद्या भीमराव कदम

■■■

वृद्धाश्रम

बात उन दिनों की है, जब मैं छठी कक्षा में थी. दुनिया के नियम-कानून से बेपरवाह अपने दोस्तों के साथ स्कूल जाना, खेलना, छुट्टियों में घूमने जाना और किसी भी प्रकार के तनाव से मुक्त रहते हुए अपना काम करना. एक दिन मैं अपने दोस्तों के साथ घर के पास वाले पार्क में खेल रही थी. हर चीज से अनजान हम लोग खेलने में व्यस्त थे. अचानक मेरा ध्यान पास बैठी एक वृद्ध महिला पर गयी, जो अपनी हम उम्र महिलाओं के साथ बातचीत में लीन थीं. वे उस भीड़ में अलग ही दिख रही थीं, क्योंकि उनके चेहरे पर एक अलग खुशी खेल रही थी और सभी महिलाएं बीच-बीच में उस महिला से कुछ न कुछ पूछ रही थी और वह वृद्धा काफी उत्साहित होकर हर महिला के प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास कर रही थी.

इसी बीच एक गेंद मेरे सिर पर आकर लगी और मैं दर्द से चिल्ला उठी. मेरे चिल्लाने से उन लोगों की महफिल में खलन पड़ गया, किन्तु उस वृद्ध महिला ने बिना विलम्ब किए मेरी ओर दौड़ लगा दी. मैं उनकी दौड़ देखकर स्तब्ध थी. अपनी बोतल से मुझे पानी पिलाया और पास बिठाकर समझाने लगी कि बेटा खेलते समय हमेशा गेंद पर ध्यान देना चाहिए. एक अनजान महिला का मेरे प्रति यह प्रेम और स्नेह देखकर मुझे काफी आश्चर्य हो रहा था, किन्तु उनका इस तरह से मेरी चोट को सहलाना मुझे काफी राहत दे रहा था. धीरे-धीरे शाम हो गई, उन्होंने मुझे घर जाने को कहा और वो भी अपना बैग लेकर अपने घर को चल दी.

मैं उनकी इस आत्मीयता के बारे में सोचते हुए घर की तरफ बढ़ी जा रही थी, किन्तु अचानक ही उनकी आवाज मेरे कानों तक पहुंची और मैं वहीं रुक गई, मेरे पास आकर उन्होंने कहा कि चलो मैं तुम्हें घर छोड़ देती हैं. मुझे भी काफी अच्छा लगा कि मैं इनको माँ-पापा से मिलवाऊंगी. मेरे काफी आग्रह करने के बाद वो ऊपर तक आईं, फिर थोड़ी देर बैठकर चली गई. मैंने उसी बीच पार्क में हुई सारी घटना का जिक्र अपनी माँ से किया, मेरी बातें सुनकर मेरी

माँ के चेहरे पर उनके लिए आदर दिखने लगा, जिसे मैं महसूस कर सकती थी. उस दिन के बाद से वो भद्र महिला मुझे लगभग रोज मिल जाती थी और मैं उनके पास थोड़ी देर जरूर बैठती. मेरे साथ-साथ उनको भी बहुत अच्छा लगता था.

फिर एक दिन उन्होंने मुझे अपने घर चलने को कहा, मैं बिना खेले उनके साथ चल पड़ी. उनका घर देखकर मैं हैरान रह गई, इतना बड़ा घर और रहने वाली वो अकेली और दो नौकर. लगभग आधे घंटे के बाद मैं वहाँ से आ गई. उस दिन उन्होंने मुझे अपने बेटे के बारे में बताया, जो अमरीका में रहते थे. उस दिन मैंने उनकी खुशी का कारण पूछा तो पता चला कि अगले हफ्ते उनका लड़का अपने पूरे परिवार के साथ यहाँ आ रहा था, जो उनको अपने साथ लेकर जाने वाले थे. फिर वो दिन भी आया, जब उनका लड़का अमरीका से यहाँ आया. मैं भी एक दिन उन लोगों से मिलने गई थी.

बहुत दिनों के बाद मैं उनके घर जाने को निकली तो माँ ने कहा, मैं भी चलती हूँ. मुझे और अच्छा लगा. हम दोनों जब वहाँ पहुंचे तो घर पर कोई नहीं था. पता चला कि वो लोग सारी चीजें बेचकर अमरीका चले गये. मन उदास हो गया कि उनसे आखिरी बार मिल भी नहीं पाई. माँ पूरे रास्ते मुझे समझाते हुए आई. मैं समझ भी रही थी, लेकिन बस आखिरी बार उनसे मिलना चाहती थी. हर रोज पार्क खेलने जाती थी, किन्तु मेरी आँखें उन्हें ही ढूँढ़ने का असफल प्रयास करती थीं. फिर वार्षिक परीक्षा की वजह से पार्क जाना कम हो गया, किन्तु उनका चेहरा हमेशा मेरे सामने आता था.

धीरे धीरे दिन गुजरते चले गए, लगभग चार साल बीत गए और हर साल की तरह इस बार भी मेरा जन्मदिन आया, पापा ने कहा कि इस बार केक हम नए लोगों के बीच जाकर काटेंगे. मैं और मेरी माँ दोनों स्तब्ध थे कि पापा कहना क्या चाह रहे हैं. फिर उन्होंने हमें एक वृद्धाश्रम के बारे में बताया, जो हमारे घर से लगभग 2-3 किलोमीटर की दूरी पर था. पापा का सुझाव हम सभी को काफी पसंद आया, किन्तु दुख भी था कि इस बार मेरे दोस्त जन्मदिन पर नहीं आ पाएंगे.

मैं इस बारे में सोच ही रही थी कि पापा ने कहा, तुम अपने कुछ दोस्तों को भी अपने साथ लेकर आ सकती हो. मुझे काफी खुशी हुई कि चलो कुछ दोस्त तो साथ रहेंगे.

लगभग छः बजे हम लोग वहाँ पहुँच गए. उन लोगों को पहले ही बता रखा था, इसलिए वे भी हमें तैयार ही मिले. एक साथ इतने बुजुर्ग लोगों से मिलने का यह मेरा पहला अनुभव था. उनकी आँखों में देखने के बाद मुझे ऐसा लगा कि यहाँ आकर मैंने कोई गलती नहीं की. सब बहुत खुश थे, मैंने केक काटा और लगभग सभी को अपने हाथों से केक

खिलाया, तभी मेरी नज़र दूर बैठी एक महिला पर गई, जो सफेद साड़ी में भीड़ से दूर बैठी थी. जब मैं उनकी तरफ बढ़ी तो वहाँ उपस्थित कुछ लोगों ने मुझे रोक दिया, कहा- तुम वहाँ मत जाओ, वो किसी से नहीं मिलती है, नाराज हो जाएंगी, किन्तु मेरा मन नहीं माना और मैं उनकी तरफ एक हाथ में केक और दूसरे में कॉफी लिए बढ़ चली.

उनके पास पहुँच कर मैंने उन्हें केक देने की कोशिश की, उन्होंने बिना मेरी तरफ देखे बहुत ही प्यार से मना कर दिया और जन्मदिन की बधाई देते हुए वहाँ से जाने लगी. किन्तु मैं भी सोचकर गई थी कि उनको केक खिलाकर ही आऊँगी. तभी हमारी नजरें मिली तो हम दोनों ने एक दूसरे को पहचानने की कोशिश की. उन्होंने शायद मुझे पहचान लिया था, जिसके बाद वो और भी तेजी से अपने कमरे की तरफ भागी. मैं तुरंत अपनी माँ के पास गई और सारी बात बताई, माँ ने पहले तो कहा उन्हें अकेला छोड़ दो, फिर मेरे आग्रह करने के बाद बोली, चलो मैं भी चलती हूँ.

हम उनके कमरे में गए और इस बार नज़र मिलते ही उनकी आँखों से आँसू निकल आए. मैं उनके पास ही बैठ गई और उन्हें अपने हाथों से केक खिलाया. काफी देर बैठने के बाद हम वापस घर आ गए.

उस रात मुझे नींद नहीं आई. पूरा दिन स्कूल में भी उनके बारे में ही सोचती रही. स्कूल खत्म होते ही मैं जल्दी से घर आई और आश्रम जाने के लिए माँ से पूछ कर निकल गई. वहाँ पहुंची तो मुझे लगा कि शायद वो भी मेरा ही इंतजार कर रही थीं. उस दिन उन्होंने अपनी सारी बातें विस्तृत रूप से बतायीं कि किस प्रकार उनके लड़के ने सारी संपत्ति बेचकर उन्हें यहाँ पहुंचा दिया, जल्द ही वापस आने को बोलकर चला गया और आज तक नहीं आया.

आश्रम जाने का सिलसिला काफी दिनों तक चलता रहा, फिर अचानक एक दिन पापा का तबादला दूसरे शहर में हो गया. यह जानकार वे काफी दुखी थीं और मैं भी लेकिन हमें तो पापा के साथ जाना ही था. जाने के दिन हम सभी उनसे मिलने गए और जल्द ही आने का वादा करके हम नई जगह के लिए निकल गए.

नई जगह नए लोग, मैं हर वृद्ध महिला में उनका चेहरा देखती थी, उनसे बीच-बीच में बात भी होती थी. फिर एक दिन बहुत ही अच्छी खबर आई कि पापा किसी काम से उसी शहर में जा रहे हैं. मैंने भी जिद की कि मुझे आश्रम में छोड़कर आप अपना काम कर लेना. पापा मुझे वहाँ छोड़कर जाने लगे तो वहाँ के मालिक ने पापा को कार्यालय में बुलाया और इसी बीच मैं उनके कमरे की तरफ दौड़ी, लेकिन दरवाजे पर ताला लगा था. मैं वापस आ गई. उसके बाद पापा ने जो बताया सुनकर दिमाग सुन्न हो गया, उनका देहांत दो दिन पहले हो गया था...

नम्रता नायक

■■■

गुजराती झूला

"आपको तो बस, इस निगोड़े झूले पर अधलेटे हुए अखबार में सर घुसाये या टी. वी. पर आँखें टिकाये रखने के अलावा, कुछ और सूझता नहीं. . अपने आप से किसी काम में मदद करते नहीं और अगर कुछ कर भी दोगे तो मेरी जान को और., सौ-सौ काम पक्का बढ़ा दोगे. . . अब मुझ से नहीं होता पहले की तरह ऊपर-नीचे के चक्कर लगाकर, नौकरानी के पीछे किच-किच करते रहकर काम कराना."

खूब समझ रहा हूँ मैं. . श्रीमती जी मारे खुशी के बौरा गई हैं. और हो भी क्यों न ? जिस दिन से शिखर का फोन आया है कि उसे एक हफ्ते की छुट्टी मिली है तथा सपना और वो दोनों साथ मिलने-रहने के लिए गाँव आ रहे हैं, श्रीमती जी ने अच्छे-भले सिमटे घर को बल्कि सच कहूँ तो, एक-एक कमरे को उलट के रख दिया है, पंखे उतरवा कर साफ कराये, अलमारियों में बिछे पीले पड़ चुके पुराने अखबारों को हटा कर नए चिकने वाले अखबारी-पेज बिछवा कर, सारा सामान और भी बड़े करीने से रखा गया है. दीवारों पर लगे मकड़ियों के जाले, खिड़कियों की जालियों, मेज-कुर्सियों, सोफे दीवान की डस्टिंग का शेडयूल जो पहले, हफ्ते-दस दिन में कभी एक बार भी हो जाए तो गनीमत समझो, अब फोन आने के बाद से हर दूसरे दिन पर शिफ्ट हो गया है.

और. . यह सब, अब यूँ ही नहीं हो रहा है. शिखर तो चलो पैदाइश से ही इसी माहौल में रह कर पढ़ा-लिखा और जवान हुआ है. पर शहर में पली-बढ़ी सपना. . वो कहाँ कभी किसी गाँव देहात में रही है. उसके पापा तो शुरू से ही बड़े शहरों में ही पोस्टेड रहे हैं. कम्पनी की तरफ से मिले चमकते-दमकते आलीशान घर में, उसके मायके में. . नौकरों की जोड़ी हरदम हरेक चीज को करीने से संभाल कर रखने के लिए मौजूद और मुस्तैद

रही है. सच, शिखर और सपना की शादी के बाद के दस-पंद्रह दिनों में, कभी बड़े भैय्याजी के तो कभी छोटे लल्ला के घर, खाने-पीने की रस्मों में, समय कब हवा बन कर उड़ गया, पता ही न चला. तब से गई हुई अब आ रही है दो साल के बाद. .

इस बीच में एक बार, बड़ी बहनजी के लड़के के ब्याह में गुडगाँव आई थी. तब, यहाँ गाँव आने का मौका ही नहीं था और अभी पिछले बरस. . अपने भाई की सगाई के वक्त भी, जब उसका नोएडा आना हुआ, तब हम दोनों आकर उनसे वहीं फंक्शन में मिल लिए थे. अब जब गाँव आ रही है, तो सच में, समझो पहली बार आकर रहेगी हवेली में हम दोनों के साथ..... क्या सोचेगी वो अपनी ससुराल के बारे में..... कैसा रख-रखाव है शिखर के घर का? बस... यही एक अनजानी-अनदेखी सी चिंता श्रीमती जी को बौराए हुए है.

मैं, शहर के सरकारी इमदाद वाले इंटर कॉलेज में गणित पढ़ाने की तसल्ली भरी नौकरी से अभी चार साल पहले ही रिटायर हुआ हूँ. वहां शहर की आपा-धापी भरी जिन्दगी की निरंतर भागमभाग से त्रस्त हो कर, सुख-चैन और सुकून से रहने को वापस, अपने गांव आकर अपनी पुश्तैनी हवेली में बस गया हूँ. शुरू-शुरु में तो श्रीमती जी सही अकुलाई कुलबुताई, लेकिन सच में दस्तक देते बुढ़ापे की सोच और मेरी मोहब्बत की मजबूरी में. अल्टीमेटली. . साथ चली आई. जिन्दगी भर मैंने, न तो कभी ज्यादा

शहर की आपा-धापी भरी जिन्दगी की निरंतर भागमभाग से त्रस्त हो कर, सुख-चैन और सुकून से रहने को वापस, अपने गांव आकर अपनी पुश्तैनी हवेली में बस गया हूँ

पाने की सोच रखकर खुद को बेचैन किया और न कभी चादर के बाहर पैर फैलाकर, अपने आज और कल के लिए चिंता में खुद को जलाते रहने की जगह छोड़ी अत: रिटायरमेंट के बाद हम दोनों ताजे-ताजे, सो-कॉल्ड बुढ्ढा-बुढ़िया का सरकारी पेंशन और बटाई पर दी खेती की कमाई से बड़े आराम से गुजारा चल रहा है. हाँ, बस एक फर्क आया है शायद. . आदतन मैं. . . कुछ ज्यादा ही आराम-तलबी का शौकीन हो गया हूँ, घर पर एक बड़ा सा गुजराती-स्टाइल का झूला मेरा परमानेंट ठिकाना रहा है.

उसी पर गाव-तकियों के सहारे "लेटे-बैठे" (मुआफ करियेगा मेरी आराम-पसंदगी की फितरत में अब, "बैठे-बैठे. . की टर्म मुझे सूट नहीं करती). . चाय की चुस्कियों के साथ अखबार पढ़ना, पुरानी फिल्मों और उनके गानों-गजलों को सुनना, नाश्ता करना और फिर. . . फिर से चाय पीना, फिर खाना खा कर लगी मीठी सी झपकी को, अकेली बोर होती श्रीमती जी के तीखे प्रवचनों के बाणों से कुर्बान होते देखना. . विद्यारानी के संग बाई गॉड की कसम. . मस्ती में मस्ताते,

कभी मुस्कुराते, कभी एक दूसरे से रूठते-गुर्राते, फिर मनाते-मनाते गुजरती जिन्दगी. . अब इससे ज्यादा की क्या सोचूँ और क्यों सोचें? यूँ तो हमारा सारा कुनबा ज्यादातर यहीं गाँव में ही है, पर अपने परिवार में हम दोनों हीरो हिरोइन के अलावा इकलौता बेटा शिखर है, जो ऊपर वाले की करम भरी निगाह और बुजुर्गों के आशीर्वाद से एम. एस. सी. (गणित) और बी. एड. करके पुणे के एक टेक्नीकल इन्स्टीट्यूट में लेक्चरर है और. . . सोने पर सुहागा, हमारी बहुरानी यानी सपना उसी इन्स्टीट्यूट में आई. टी. डिपार्टमेंट में सब- लेक्चरर है. वो दोनों अपनी जिन्दगी में. . अपनी दुनिया के सपनों में. . रंग भरने में मस्त हैं और यहाँ गाँव में. . हम दोनों, खुद को सुहाते, शांत-सुकून भरे मौहाल में एक दूसरे से खट्टी-मीठी झूठी लडाइयाँ लड़ते, और फिर. . खुद ही सुलह करके, आने वाले असली-बुढ़ापे को धोखा देने के लिए खुद को चुस्त-दुरुस्त रखते हुए अपने आप में मस्त हैं.

हाँ, यह सच है कि हम दोनों के दिल और आँखो में बस. . एक इन्तजार. . हमेशा रहता है कि इस बार शिखर और सपना आ सकते है, अगर होली पर नहीं आ पाए तो. . दिवाली पर तो जरूर आ ही जायेंगे. पिछले दो बरस से, यह इन्तजार. . बस इन्तजार ही बन कर रह गया है. शायद, यह भी एक कारण हो सकता है इस इन्तजार के उतावलेपन से उपजे श्रीमती जी के तानों-उलाहनों का और बौरा जाने का.

अब, तब तक. . जब तक, शिखर और सपना का यह पहला "विलेज- विजिट" खतम नहीं हो जाता, मुझे बखूबी पता है कि चाहे-अनचाहे मुझ नाचीज को, श्रीमती जी की बेमतलब की कभी मीठी तो कभी कुरकुरी फटकारों की हाजमोला सटकनी ही है. और फिर, अपने "गुजराती-झूले" पर आरामतलबी से अलसाए पड़े, अपनी चाय की चुस्कियों की रेगुलर-डिमांड की सप्लाई सुनिश्चित करने के लिए, श्रीमती जी की बातों में फुल-इंटरेस्ट दिखाने की नौटंकी में कभी कभी. . "हूं-हाँ." करते रहना अति आवश्यक है, और., आपका यह रिटायर्ड-सरकारी-मास्टर लगभग अपनी चार साल की "पोस्ट- रिटायरमेंट-लाइफ के तजुर्बे से इतना तो बखूबी सीख ही चुका है.

खैर, आखिर शिखर और सपना के घर आने की सुबह भी आ गई. छोटे-लल्ला का लड़का शहर जाकर, उन्हें कार से ले आया. सपना आश्चर्य भरी आँखों से रास्ते में पड़ने वाले घरों के बाहर खड़े लोग- लुगाई बच्चों को देख रही थी जो शिखर और सपना को देख, खुश हो रहे थे. उसे शायद अंदाजा लग रहा होगा कि उनका आना. . न सिर्फ, हम दोनों के लिए बल्कि पूरे गाँव के इस इन्तजार के लिए कितनी खुशियाँ लेकर आया है. हवेली के सदर दरवाजे पर कुटुंब की बेटी- बहुओं के साथ श्रीमती जी आरती के सजे थाल के

साथ मौजूद थी. सपना बुजुगों के चरण-स्पर्श करती और हम-उम्रों के गले लगती, मुस्कुराती हुई उस अनोखे उल्लास का आनंद लेती मेरे पास आई, मैंने उसके सर पर आशीषों भरा हाथ रखा और वो सहसा ही मुझे नन्हें बालक की तरह "बाबूजी" कह कर लिपट गई. मुझे लगा जैसे मेरी अपनी बिटिया ससुराल से लौटकर आई हो. सच. . . खुद को रोक न पाया. . पता ही नहीं चला कब मेरे अन्दर का धीर-गंभीर संयमित सा "मैं". . . भावनाओं के आवेग में बह कर अश्रुबिंदुओं का रूप ले मचल उठा. "वाह बाबूजी. . . ! अब मैं इतना पराया हो गया कि पहले आपके गले लगने का मेरा हक आपने इस सपना को दे दिया" खिलखिलाते हुए शिखर भी मुझसे जोर से चिपट गया. उन दोनों को गले लगाए आँखे बंद किये मैं एक अनोखे सुख-सागर के आनंद में डूब गया कि श्रीमती जी ने आकर धीरे से कहा "बस-बस मास्टरजी. . . बस, क्या बच्चों की तरह. . . " और आगे वो भी कुछ न कह सकीं.

दोपहर के खाने के दौरान, शिखर ने बताया की उन दोनों ने वहीं पुणे में एक बड़ा सा फ्लैट ले लिया है ग्राउंड फ्लोर का. चारों तरफ वेल मेंटेंड पार्क, हरियाली ही हरियाली, फव्वारे, क्लब, जिम और. . और "लाफ्टर-क्लब, जो कुछ भी आज की जिन्दगी में, जरूरी बनता जा रहा है. . सब कुछ है. बड़ी खुशी हुई जान कर और फिर हँसते- खिलखिलाते, मुस्कुराते-गुनगुनाते पाँच दिन कब बीते, पता ही न चला. इन पाँच दिनों के हर पल, हर क्षण में अगर हमारे दिल, निगाह, जुबान पर. . हमारे चारों ओर कुछ था तो बस एक ही नाम "सपना". . सिर्फ और सिर्फ "सपना. .

ऊपर के बेडरूम की बजाय, नीचे, हम दोनों के साथ बड़े कमरे में ही रहने-सोने की जिद मनवा कर मानी सपना. ., बड़ी सहजता से घर की अन्य जिम्मेदारियों से श्रीमती जी को लगभग फ्री करती सपना. . मेरी आरामतलबी और चाय की चुस्कियों की कमजोरी जान, हर दो तीन घंटे बाद आधा-कप चाय मुझे देकर, बाकी आधा कप मेरे साथ, मेरे "गुजराती-झूले" पर संग बैठकर चाय पीती हुई और श्रीमती जी के कुरकुरे-उलाहनों के लिए, एक नए शिकार के रूप में खुद को सामने करती सपना. . शाम को घर के बड़े नीम पर पड़े झूले पर बच्चों, लड़कियों के संग कुदक्कड़े लगाती सपना. . तो कभी इक्कल दुक्कल, कभी रस्सा-पेंच तो कभी ऊँच-नीच खेलती सपना. . . इन सब में मुझे श्रीमती जी के ख्यालों में रची-बसी, बड़े शहर के चमकते-दमकते साफ सुथरे करीने से सजे-संवरे घर में पली-बढ़ी "एम. टेक." क्वालिफाइड, गंभीर सब-लेक्चरर सपना. . कहाँ खो गई. . मैं ढूंढ ही नहीं पाया. . और श्रीमती जी. . वो खुद हत्प्रभ, चकित हो तय नहीं कर पा रही थी कि उनकी हवेली में आई. . यह लड़की सपना. उनकी बहू है या फिर, उन्हें और मुझे, इस जिन्दगी को, इसके हर-इक-पल, हर-इक-लम्हे को सच में जीने

का पाठ पढ़ाती, अपने घर-आँगन में खुशियों-उल्लास की अमरबेल की पौध लगाने आई. . हमारी अपनी बिटिया सपना. . है.

"बाबूजी! हम लोगों का परसों का रिजर्वेशन है. आज और कल में, मैं और अम्माजी सारी पैकिंग वगैरह सब कर लेंगे, लेकिन. . मुझे आप से बस एक चीज चाहिए. . मना मत करियेगा. " मैं भला कैसे मना कर सकता था इस नई नवेली लाडली को? परन्तु सच. . . मुझे गहरा धक्का लगा जब उसने मुझसे हवेली में मेरा एक अकेला "परमानेंट- ठिकाना". . मेरा प्यारा "गुजराती झूला". . मांग लिया. यह झूला तो मेरी जान थी. मैं घर पर हूँ और उस पर कोई और लेट-बैठ जाए. . पता नहीं क्यों! मैं छोटे बच्चे की तरह किलस-किलस जाता हूँ. किस कदर पोजेसिव सा हूँ मैं. . अपने इस गुजराती-झूले के लिए. घर- कुटुंब में हर कोई जानता है. उस झूले के बिना, मुझे मेरा सारा वजूद अधूरा सा लगता था. मेरा दिन-रात का साथी मेरा झूला. . मेरे मन की पीड़ा और परेशानियों के वक्त में अपना सहारा देता, मुझे अपने में समेटता मेरा गुजराती झूला. . . और खुशियों के उल्लास के पलों में मेरे संग गुनगुनाता-चहचहाता. . मेरा गुजराती झूला. .

उफ्फ. . .! आज यह क्या मांग लिया सपना ने और क्यों मांग लिया ? मैं अन्दर तक बुरी तरह आहत हो चुका था परन्तु, मना करने की स्थिति में नहीं था. बड़े लाड़ और हक के साथ, प्यार भरे अंदाज में सबके सामने सपना ने पहली बार मुझसे कुछ माँगा था. बुझे मन से धीरे से मैंने उसे अपनी स्वीकृति दे दी कि वो और शिखर मेरा यह गुजराती झूला ले जा सकते हैं. "लेकिन बाबूजी हमें यह झूला आधा-अधूरा सा नहीं. . . "सम्पूर्ण रूप" में चाहिए" सपना बोली. अब अति हो रही थी. . . . मैं अब इस बारे में कुछ भी - एक शब्द भी कहना-सुनना नहीं चाहता था और कहीं एकांत में जाकर चुप बैठना चाहता था.

मुझे सपना के साथ बिताये बीते सारे-दिन, सारे-पल बड़े बेमानी से लग रहे थे. उसका बच्चों की तरह मचलना, खेलना, घुल-मिल जाना, जिम्मेदारियों के प्रति आगे बढ़ कर खुद को प्रस्तुत करना. . . सब, मुझे एक सोचा-समझा-विचारा खेल लगने लगा था जिसमें खुद. . मैं, भावनाओं के अतिरेक में आकर खिलौना बन गया था. अफसोस तो यह कि सपना तो चलो नई है पर शिखर. . . वो तो मेरा अपना बेटा है, मेरा अपना खून. . . वो कैसे भूल गया इस झूले की मेरी जिन्दगी में जो अहमियत है. फिर भी, अपनी तल्खी और उदासी को किसी तरह छिपाते हुए मैंने कहा, सपना. . अभी तुम मुझे जानती नहीं हो. जब मैंने एक बार कह दिया तो कह दिया. . यह सम्पूर्ण झूला अब तुम्हारा है. . इस बारे में न तो मुझे कुछ और कहना है, न सुनना है. मेरी तरफ से यह चैप्टर अब. . खतम है. मुझे कहते हुए अफ़सोस हो रहा है पर मेरा दिल और भी टूट गया जब मैंने सपना को शिखर और

उसकी माँ की तरफ एक विजेता की तरह मुस्कुराते हुए देखा. मैंने देखा. . . बड़े भैय्याजी, भाभीजी और उस मेरे नालायक छोटे भाई "लल्ला" को. . उनकी ओर शाबासी भरी निगाहों से देखते हुए. मैं खुद को वहां एक पल के लिए भी रोक न सका और उठ कर बाहर बरामदे में आकर, आँखें बंद करके बैठ गया. कुछ पल बाद, मेरे कंधे पर कोमल स्पर्श ने मुझे उस पीड़ा भरे अंधियारे से जगाया, "उठिये बाबूजी. . . यह क्या ?. . हम दोनों को इतनी बड़ी खुशी देकर आप यूँ यहाँ अकेले बैठे हैं, अन्दर आइये न सबके साथ बैठिये; आँखे खोली तो सपना सामने थी और उसके पीछे दोनों हाथों में आधा-आधा कप चाय लिए शिखर.

एक दो दिन की ही तो और बात है उबलते मन में उठते प्रश्नों को स्वयं उत्तर देकर, खुद को संयमित करते हुए, चाय का कप हाथ में लेकर मैंने उन्हें देखा और उठ कर उनके साथ अन्दर आ गया. छोटे-बड़े. . सब थे वहां. बड़े भैय्याजी मुस्कुराते हुए बोले आ आ आजा मास्टर. . . आ, यह तेरा झूला "सम्पूर्ण रूप" से इन बच्चों का हो गया है, तूने जुबान दी है हम सबके सामने. अब इसे उतारने के लिए नौकरों को तू खुद ही बोलेगा या यह कष्ट भी मुझे ही करना पड़ेगा?

भैय्याजी !. . आप मुझे अच्छी तरह. . . . . "अरे जानता हूँ जानता हूँ " किल्सू-स्वामी. . . . मेरी बात अधूरे में काटकर वो बोले, "जानता हूँ तुझे भी और तेरी आदतों को भी और तू भी मुझे जानता है. . अच्छी तरह." सच. . भाई साहब मेरी चुटकी लेने का कोई मौका छोड़ दें. . भला हो सकता है कभी?

बचपन से ही भाई साहब मेरे लिए, इसी "किल्सू-स्वामी" की उपमा को इतनी नजाकत से, अपनी बात को वजन देने के लिए बातचीत में. . यूँ ही फिट करते रहे है और फिर, इसे आँखे मटका-मटका कर एन्जॉय भी करते रहे हैं कि मैं पलट कर, कुछ भी कह नहीं पाता. . और नतीजन, सच में. . मैं घनघोर डिग्री में किलस-भुनक जाता हूँ. परन्तु, यह कोई वक्त है सबके सामने ऐसा कह कर मेरी खुश्की उड़ाने का. . सब नादानों की तरह, उस सपना के चढ़ाये रंग में रंगे पड़े हैं. . मुझे अकेला करके. . "अभी बहुत काम बाकी है निबटाने को", वो बोले, "बड़ी-बहू (शिखर की माँ) की सारी पैकिंग हो गई है. सपना ने तेरी भी सारी जरूरी चीजे इकट्ठी कर कमरे में एक जगह रख ली हैं फिर भी, जा कर एक निगाह देख ले. परसों तू और बड़ी-बहू दोनों शिखर और सपना के साथ पुणे जा रहे हो. . तूने वचन दिया है और हम सब गवाह है."

"मैं कहीं नहीं जा रहा अपना यह गाँव, यह हवेली छोड़ कर और मैंने किसी को भी ऐसा कोई वचन नहीं दिया है. सब मेरे बैरी कर दिए इस दो दिन की सपना ने"... मैं रुआँसा हो गया.

"बाबूजी!" सपना बिना मेरे आरोपों से विचलित हुए, जैसे पहले, बड़े लाड से बोलती रही थी उसी प्यार और जिद भरे पर धीरे स्वर में बोली, "जानते हैं. . शादी के बाद मुझे शिखर जी ने सबसे पहली बात आपके और इस झूले के इस आत्मीय रिश्ते के बारे में ही बताई थी और यह भी कि आप अपनी बात और कौल के कितने पक्के हैं. अब आपने अपना यह प्यारा झूला "सम्पूर्ण रूप" में हमें दे दिया है अभी सब के सामने. . और हम सब जानते हैं कि आपके बिना यह सुन्दर सा गुजराती-झूला निष्प्राण है. "हम दोनों तो तय कर चुके हैं कि अब हम आपके बिना अधूरे-अधूरे से होकर, वहां पुणे में बिलकुल नहीं रहेंगे. " शिखर धीरे से बोला, "बाबूजी, आज हम दोनों जहां भी हैं. . जिस भी मुकाम पर है सिर्फ और सिर्फ, आप और अम्मा के और सपना के मम्मी-पापा की सोच, समर्पण और मेहनत के दम पर हैं." "उम्र के इस पड़ाव पर हर पल, हर-क्षण अब हमें, आपकी और आपके आशीर्वाद की और भी ज्यादा जरूरत है और अब आप, हम दोनों के होते, अकेले बिलकुल भी नहीं रहेंगे. "हवेली में स्कूल खोला जाएगा. ताउजी, चाचाजी, उसकी देखरेख करेंगे, अम्मा, ताउजी-ताईजी, चाचाजी-चाचीजी सबसे बात हो गई है. और. . . अगर यह गाँव, यह हवेली छोड़कर जाने को आप का दिल नहीं करता है तो हम दोनों भी टीचर ही हैं. . गाँव में रह कर यहीं के बच्चों को "हायर एजुकेशन के कम्पीटीशन" के लिए तैयारी करायेंगे. लेकिन अब जहाँ भी, जिस जगह भी रहेंगे. . साथ-साथ रहेंगे. "और... ताउजी, चाचाजी और आप हवेली के स्कूल में हम दोनों को मेरिट के हिसाब से नौकरी तो दे ही देंगे. . है न बाबू जी..." गीली आँखों से मुस्कुराते शिखर को मैं बस देखता ही रह गया, और, शिखर और सपना के वापस जाने के दिन. . वो मेरा प्यारा सा गुजराती-झूला. .

गाँव की हमारी पुश्तैनी-हवेली की ऊँची-ऊँची छत के कुंडों से लटकी, अपनी बरसों पुरानी चेनों को समेट कर पुणे के नये आसमान में, वहां की हरियाली के बीच बने एक नए आशियाने की छत से मिलने चल दिया. . .

ललित कपूर

■■■

ऐ री मैं तो प्रेम दीवानी. . .

साब! लगता है, भारी बारिश की वजह से नदी के ऊपरी इलाकों में भयंकर बाढ़ आ गई है, गाँव के गाँव बह गए हैं. हमें यह बच्चा नदी में एक भगौने के अंदर तैरता मिला है. बारिश में काफी भीग चुका है.

वह तो हमने समय पर इसे देख लिया और अपनी ट्रेनिंग और क्षमता के कारण इसे बहाव से निकालने में हम कामयाब रहें, नहीं तो भगौने में बरसात का पानी और भर जाने पर यह डूब जाता. लगता है कि इसके होशियार माता-पिता ने इसे डूबने से बचाने के लिए भगौने में रखकर इसे निकालने की कोशिश की होगी. खुद तो बह गए होंगे लेकिन बच्चा बच गया.

सैनिक अभियांत्रिकी के दो वरिष्ठ कर्मचारी अभी-अभी सैन्य चिकित्सक, डॉ. गौतम डबराल के सामने एक बच्चे को लेकर हाजिर हुए हैं. बच्चे की उम्र बामुश्किल कुछ घंटे या कुछ दिन रही होगी.

साब! बच्चा भीग गया है. इसे थोड़े इलाज की जरूरत है. आपको तकलीफ देने के अलावा कोई उपाय भी नहीं है.

सैन्य चिकित्सक डॉ. डबराल के लिए किसी भी मनुष्य को मृत्यु की ओर जाने से रोकना तथा मृत्यु के पंजे से उसके जीवन को बाहर निकालना, उनके पेशे का मुख्य उद्देश्य रहता है. उन्होंने बच्चे का डॉक्टरी मुआयना करके दवाइयाँ एवं जरूरी उपचार एक पर्चे पर लिखकर सिस्टर मैरी को हिदायत दी कि बच्चे को खाली पड़े बेड पर साफ बिस्तर और साफ चादर मुहैया कराएं तथा जरूरी निदान व सेवा प्रदान करें.

वे अपनी मेज पर अपने व्यवसाय से संबंधित पत्रिका को खोलकर पढ़ने लगते हैं, अचानक उनके मस्तिष्क में बिजली सी काँध जाती है. उनके अंतर्गत में भूतकाल की घटनाएँ परत दर परत खुलकर सामने आने लगती हैं. उनका मस्तिष्क स्वयं से प्रश्न करने एवं उनका उत्तर खोजने व उत्तर देने में तेजगति से व्यस्त हो जाता है.

उन्हें याद आते हैं, आज से लगभग 30 वर्ष पूर्व के वे दिन, जब वे छुट्टियों में पहाड़ों के मध्य स्थित अपने गाँव अपने दादा-दादी के पास जाया करते थे. उनके पिता सेना में थे. उनका जीवन, छावनी, सेंट्रल स्कूल तथा सैनिक स्कूल के नितान्त शुष्क एवं अनुशासित वातावरण का आदी हो चुका था. जब वे पहाड़ों पर स्थित अपने गाँव जाते तो वहाँ का स्वच्छ एवं शीतल वातावरण, देवदार के वृक्षों की छाया, कल-कल करते झरने, कलरव करते पक्षी तथा स्वच्छ, लापरवाह व सीधा-साधा जीवनयापन, उन्हें

एक बार प्यार किया तो गलती होने से कैसे बचा जा सकता था और गलती दोहराना तो इस अवस्था की स्वाभाविक आदत जो ठहरी. गलतियाँ होती रहीं और दुहराई जाती रहीं.

मानो, बेड़ियों से मुक्त कर बचपन को खुलकर खेलने और चहकने का मौका देता. वे सब कुछ भूलकर वहीं समा जाते, वहीं के होकर रह जाते. वहाँ के लोग, वहाँ के बच्चे उनके सखा बन जाते. वे सभी से खुलकर बातें व हँसी मजाक करते, यहाँ तक कि पेड़ों एवं पशु पक्षियों से भी.

बचपन और फिर जवानी की दहलीज, जिन्दगी का सबसे प्यारा और दुलारा समय तथा आने वाले कल से अनजान, उछल कूद व मस्ती से गुजरता समय, गलतियाँ करने और उन्हें दोहराने के लिए इससे बेहतर वातावरण शायद ही कभी मिले. सो, गौतम डबराल भी इससे अछूते नहीं थे, और गाँव की हम उम्र चंचल व हँसमुख पुष्पा को दिल दे बैठे.

एक बार प्यार किया तो गलती होने से कैसे बचा जा सकता था और गलती दोहराना तो इस अवस्था की स्वाभाविक आदत जो ठहरी. गलतियाँ होती रहीं और दुहराई जाती रहीं.

फिर उसका दाखिला मेडिकल कॉलेज में हो गया, लगातार सात वर्ष के कठोर परिश्रम तथा करियर बनाने की चिंता ने

गौतम डबराल को सिर्फ डॉक्टर डबराल बना दिया. वे सब कुछ भूलकर चिकित्सा विज्ञान में एक अन्वेषी एवं साधक बनकर रह गए.

इसी दौरान डॉ. कमला से उनकी सगाई और फिर शादी और फिर सेना में कमीशन पाकर वे सफलतम दम्पतियों की जमात की अग्रणी पंक्ति में सपत्नीक स्वीकृत एवं सुशोभित होने लगे. कुछ दिन बाद दादी के गुजर जाने पर उनका अपने पैतृक गाँव जाना हुआ. गाँव की धरती पर पैर रखते ही बचपन और किशोर अवस्था में गुजारे समस्त पल, चलचित्र की भाँति दृश्य दर दृश्य उनके समक्ष गुजरने लगे. औपचारिकताओं से छुटकारा मिलते ही वे गाँव में भ्रमण करने, पुराने व जाने-पहचाने लोगों से मिलने निकल पड़े.

वो पुष्पा को भला कैसे भुला सकते थे. सोचा, उसके घर चलकर उसकी खैरियत पता की जाए, पर, पुष्पा का नाम उसकी जुबान पर आते ही जैसे सब कुछ थम सा गया. उन्होंने यों ही किसी से पूछा कि पुष्पा का विवाह कब हुआ, जवाब हैरान व परेशान करने वाला था. पुष्पा की शादी नहीं हो सकती थी, उसने जो किया, उसके बाद उससे विवाह कौन करेगा.

कुंवारी ही मां बन बैठी, फिर नवजात को झरने में औंधे मुँह दबाकर मार डाला और वहीं बैठ गई. जब भीड़ इक्कट्ठी हुई और पटवारी को बुलाया गया, पटवारी ने उससे पूछा कि बच्चे का पिता कौन है? तो कभी झूठ न बोलने वाली पुष्पा ने मुस्कराकर वही जवाब दिया, जो पहाड़न प्रेमिका सदियों से देती आई है. मुझे नहीं मालूम, जिसने कई घाटों का पानी पिया हो, उसे क्या पता कौन से घाट का पानी, पेट में बीमारी दे गया.

पुष्पा वहीं, गाँव में अपने भाई के घर और खेतों में काम करते हुए तथा पशुओं की देखभाल करते हुए जीवन बिता रही है. शाम के धुधलके में साहस जुटाकर डॉ. डबराल, पुष्पा को देखने, उसके घर पहुँचे तो पुष्पा के भाई ने उन्हें अनदेखा करके, पास बहते झरने की तरफ उंगली से इशारा किया.

झरने के पास एक शिला पर मूर्तिवत् बैठी महिला पुष्पा ही थी. वह कुछ बुदबुदा रही थी, ध्यान से सुनने पर डॉ. डबराल को नया धक्का लगा.

“छिमा करें, परभू सब छिमा, म्हारो करी न करो, जानो सारे पाप छिमा करो, प्रभु! सब कुछ छिमा.”

अचानक पुष्पा उठकर खड़ी हो गई. वह डॉ. डबराल को पहचान कर चहक जाती है, मानों उसे मन की मुराद मिल गई हो. बिना कुछ पूछे ही वह बोलने लगती है, बोलती जाती है “वह तुम्हारा ही था, गौतम, सिर्फ तुम्हारा. ऐसे ही चौड़ा माथा, गोरा रंग, भूरी और बड़ी आँखें और लंबे कान और लंबे हाथ, ऐसा ही चंचल, खूब ज़ोर से रोने लगा था, मेरे पेट से बाहर आते-आते, उसे डुबाकर न

मारती तो क्या करती. तुझे बदनाम करती? तो तेरी पढ़ाई न रुक जाती? तेरी शादी कैसे होती? मेरा क्या है, मैं गाँव में, पहाड़ पर पैदा हुई हूँ, यहीं रहना, मरना-जीना मेरे भाग्य में लिखा है.

डॉ. डबराल चाहकर भी कुछ बोल न पाए, कोई सान्त्वना देने तथा कुछ कहने के लिए पुष्पा ने मानो उनसे समस्त शब्दकोश छीन लिया था. उन्हें गूंगा-बहरा बना दिया था. आज, यह बच्चा नदी में बहकर आया है. हो सकता है पहाड़ के किसी गाँव से ही हो. अगर यह अपने माता पिता की जायज संतान है तो अकेला क्यों बह रहा था. कोई माता-पिता अपने नन्हें मुन्ने को अपने कलेजे से अलग नहीं करते. साथ जीना और मरना पसन्द करते हैं. अपनी आँखों से दूर भाग्य के भरोसे तो बहने नहीं देंगे. तो क्या, यह भी पहाड़न पुष्पा जैसी किसी प्रेमिका का नाजायज है. मगर पहाड़नें तो ऐसे बच्चे को स्वयं झरने के पानी में डुबाकर मार देती हैं. तो फिर यह ज़िंदा कैसे भगौने में तैर रहा था.

समय बदला है, दुनिया बदली है, पहाड़ भी बदले हैं. अब पहाड़न प्रेमिकाएँ भी बदल गई होंगी. क्यों पाप करके सबके सामने अभिशप्त जीवन जीने को विवश हों, प्रसव पीड़ा को सहकर बच्चे को भगौने में बहा दो, उसकी हत्या का पाप अपने सर लेने में कौन सी समझदारी है.

सिस्टर मैरी, अचानक सामने प्रकट हुईं "सर. बच्चा अब ठीक है. मैंने उसे लैक्टोजन भी गर्म करके पिला दिया है. पर जल्दी से जल्दी उसे किसी अनाथालय में भेजने का इन्तजाम करना होगा."

डॉ. डबराल के विचार प्रवाह को मानो अचानक ब्रेक लग गया हो. वे उठ खड़े होते हैं. दृढ़ कदमों से बच्चे के बिस्तर की तरफ चल पड़ते हैं. "नहीं सिस्टर! यह बच्चा अनाथ नहीं है. इसका बाप मैं हूँ इसे मैं पालूँगा. यह बच्चा अभी इसी समय मेरे बंगले पर जाएगा."

बिस्तर पर पड़ा बच्चा मुँह में अंगूठा चूसता हुआ मुस्कुराने लगा है, किलकारी मारने लगा और हाथ-पैर चलाकर खुश होने लगा है.

डॉ. डबराल के मन-मस्तिष्क में मानों प्रतिध्वनि हो रही है, उनकी प्रेमिका की उसी प्रार्थना की, जो पहाड़न प्रेमिकाएँ सदियों से करती आई हैं "छिमा करें, परभू सब कुछ छिमा, म्हारो करो न करो, जानो अनजानो, सारे पाप छिमा करो, भगवान! सब कुछ छिमा."

आर. के. त्यागी

■■■

बिरजू

छोटे से गाँव का छोटा सा गरीब परिवार- जुगनू, रतिया और तीन बेटे गिरधर, गोबिंद, बिरजू. गरीब माँ-बाप ने तीनों बेटों को पेट काट-काट कर पढ़ाने की कोशिश की. दो तो न पढ़ सके, एक पढ़ गया था. गिरधर घर से भाग गया और किसी ठेकेदार के पास काम में लग गया. गोबिंद पढ़ा और बहुत अच्छा किया उसकी उपलब्धियों से परिवार में बेहद खुशियां छा गई. बिरजू अभी छोटा था पर था बाप की किसानी में सहायक.

साफ - सुथरे शहर की भव्य इमारत को विस्मय व आश्चर्य से देखते हुए माँ-बाप खुशी-खुशी अपने अफसर बेटे से मिलने आये थे. दफ्तर के गेट पर पहुंचते ही चपरासी ने झांसा-ए, बुड्ढे, कहाँ जा रहा है? जब चपरासी को विश्वास दिलाया कि उन्हीं का पुत्र इस दफ्तर का सबसे बड़ा अफसर है, तो चपरासी फटी-फटी आंखों से घूरता रहा. इन मैले-कुचैले चिथड़ों में लिपटे उसके अफसर के मां-बाप हैं.

खुशी के मारे वे केबिन में घुस गए, उन्हें क्या पता था कि किसी अफसर के पास मैले-कुचले चिथड़ों में नहीं जाया जाता. उन्हें तो ममता और वात्सल्य का वेग था और उसी प्रेमावेश में उन्होंने अपने अफसर बेटे को गले से लगा लिया, चूमा, पुचकारा लेकिन अफसर ने उन्हें बुरी तरह झिड़कते हुए चपरासी को गुस्से में डांटा-बाहर निकाल दो इन्हें, कौन हैं? इनको तुमने अंदर कैसे आने दिया? चपरासी ने दोनों को घसीटते हुए बाहर निकाल दिया. वे भौचक्के रह गये. उनकी "बेटा-बेटा" की पुकार भी गोबिंद ने नहीं सुनी.

उदास बोझिल मन, थका शरीर व जिंदा लाश की तरह वे रेंग रहे थे, तभी बिरजू आह्ला-दित हो कर उनसे पूछता है-"दादा, क्या कहा भैया ने, खूब बढ़िया दफ्तर में हैं न ! खूब अच्छी कुर्सी पर बैठता है ना! खूब अच्छे कपड़े पहनता है ना! मैंने सही कहा था न कि अपना भैया अफसर हो गया है," यह उसके स्नेह के उद्‌गार थे पर दोनों कोई जबाब न देते हुए उसे स्नेह से पुचकारने लगे. टप टप आंसुओं की झड़ी लग गई. वे धीरे-धीरे वापस आ रहे थे.

अचानक एक कार उनके पास आ कर रुकी, एक युवक उतरा और दबी- दबी खीझभरी जुबान में झल्लाया- "दादा, तुम्हें यहाँ आने की क्या जरूरत थी? मेरी इज्जत भी तो देखते. लोगों को क्या लगेगा कि इसके मां-बाप कैसे गँवार हैं, गरीब हैं, बिल्कुल तमीज नहीं है." तभी एक जोरदार झापड़ उसके गाल पर पड़ा और वह अपना गाल सहलाते भौंचक्का देखता रह गया. बाप छोटे

बेटे से कह रहा था "बेटा तू हीरा है तेरे सामने वह तेरे पैरों की धूल भी नहीं. अफसर हो गया है तो क्या तमीज तो नहीं सीखी. मां-बाप को पहचानने से इन्कार कर दिया." हल्के से दर्द से कराह कर सिसक पड़ा था यह बेचारा बाप.

तंग जिंदगी के तमाम साल सरक गए. काल चक्र ने मां को छीना और बाप भी चल बसा. बाप की लाश बिरजू ने गाँव वालों की मदद से जलाई. बिरजू बाप की हड्डियाँ बटोर कर घर ले आया है. गिरधर और गोबिंद भी सपरिवार आ गए हैं. बाप की हड्डियों के सामने ही बची-कुची जायदाद का न्यारा-बारा हो गया. बिरजू ने बैल खोए. थोड़ी सी जमीन भर उसके हिस्से आई. कर्ज का लबादा भी उसके माथे है.

भाईयों के परस्पर भरोसे के तार टूट गए. अब बाप के फूल गंगा में बहाने का जिम्मा बिरजू को मिला क्योंकि वह अकेला है, न बीबी न बच्चे. पर वह बेचारा दीन-हीन असहाय, असमर्थ है. फुरसत में है तो गंगाजी जाना ही पड़ेगा. इसके प्रबंध के लिये सब अपना-अपना हिस्सा देगें. बिरजू याचना करता है कि वह मजबूर है उसकी औकात गंगाजी तक पहुंचने की अभी नहीं है.

बड़े भाई-भाभियों का निर्णय है कि बिरजू अपना हिस्सा खुद भरे, बाप उसका भी था.

बेटा तू हीरा है तेरे सामने वह तेरे पैरों की धूल भी नहीं. अफसर हो गया है तो क्या तमीज तो नहीं सीखी. मां-बाप को पहचानने से इन्कार कर दिया. हल्के से दर्द से कराह कर सिसक पड़ा था यह बेचारा बाप.

बाप के फूल ज्यों के त्यों पड़े हैं. गमगीन, मायूस, उदास वातावरण, दुखी बिरजू, दिल का दर्द कराह उठा. वह रुआंसा-खीझ कर बोला- मेरे पास कुछ नहीं है. मैं हिस्सा नहीं दे सकता. आप मेरे हिस्से की हड्डियां छोड़ दो जब मेरी औकात हो जायेगी गंगा में डाल आऊंगा. सिसकते हुए वह झोंपड़ी से बाहर निकल गया. निपट अकेला. किसी का साया नहीं, किसी का भरोसा नहीं.

वक्त ने करवट बदली, बिरजू गांव का मेहनती युवक है. गांव के सरपंच ने उसकी वकालत की. बैंक से बैलों की जोड़ी हेतु कर्ज मिला. वह फला-फूला. पाँच बरस बाद उसके पास न कर्ज है न तंगी. बल्कि साथ है राजो सी दुल्हन. दोनों परसों ही बाप के फूल लेकर गंगा जी गए हैं.

राम गोपाल सागर

■■■

सांझ ढले

अभी कुछ दिन पहले ही शर्माजी ने अपना 62वां जन्मदिन मनाया. बैंक के उच्च पद से सेवानिवृत्त हुए उन्हें कुछ समय बीत गया था. बैंक में अपनी कार्य-शैली, बुद्धिमत्ता, परिश्रमी व्यक्तित्व के लिए प्रसिद्ध श्री शर्मा निर्णय लेने एवं नियोजन में भी निपुण माने जाते थे. शर्माजी के लिए कठिन से कठिन मानकों पर खरा उतरना मानो रोज़ की ही बात थी. परंतु सेवानिवृत्ति के पश्चात श्री शर्मा कुछ बुझे -बुझे रहने लगे थे. हालांकि सेवानिवृत्ति के पश्चात उन्हें अन्य संस्थाओं से काम के लिए प्रस्ताव आए थे, किन्तु उनके पुत्र ने साथ में जाने की ज़िद की, तो शर्माजी मना नहीं कर पाए.

शर्माजी के एक पुत्र और एक पुत्री हैं. पुत्री विवाह उपरांत अपने परिवार में खुश है, पुत्र एक नवरत्न कंपनी में अच्छे पद पर कार्यरत है, माता-पिता की हर सुख-सुविधा का प्रबंध कर पुत्र ने सुनिश्चित किया कि जीवन की साँझ में माता-पिता हर प्रकार से खुश रहें. किन्तु शर्माजी अपने पुराने दिन भूल नहीं पा रहे थे. रोज़ बैंक हेतु सुबह की तैयारी, रोज़ नई चुनौतियाँ और हर शाम उन चुनौतियों पर जीत की खुशी, यह सब की कमी जीवन में एक रिक्तता सी पैदा कर रही थी. कहीं भी मन नहीं लगता था. पढ़ने के शौकीन शर्माजी ने अपने घर में एक व्यक्तिगत लाइब्रेरी बना रखी थी. नौकरी के दौरान तो पढ़ने का अधिक समय नहीं मिल पाता था, सोचा था सेवानिवृत्ति के पश्चात पढ़ेंगे, किन्तु अब वे पुस्तकें भी मन को नहीं भा रही थीं. हर माह के अंत में अब पेंशन आती थी, पेंशन के एस. एम. एस. से उनका मन और भी व्यथित हो जाता था.

बार-बार एक ही खयाल आता कि अब मैं बूढ़ा हो गया. श्रीमती शर्मा और उनके पुत्र कई प्रकार से शर्माजी का मन बहलाने का प्रयत्न करते, किन्तु शर्माजी जैसे अंदर ही अंदर घुलते जा रहे थे. कभी तो खुश रहते, किन्तु कभी-कभी एकदम चुपचाप से रहते.

एक दिन शर्माजी के बहुत पुराने मित्र का फोन आया. यह मित्र उनके स्नातक के दिनों में साथ था. कुछ देर तो शर्माजी अबाक हो उसे सुनते रहे, फिर काफी देर तक पुराने दिनों की बातें होती रहीं. मित्र ने शर्माजी को कॉलेज की रियूनियन पार्टी पर आमंत्रित करने हेतु फोन किया था. रियूनियन पार्टी को अभी एक माह शेष था. शर्माजी उहापोह में थे कि जाएँ या न जाएँ! पुत्र के जोर देने पर उन्होंने पार्टी में जाना तय किया. जीवन में कुछ नया हुआ, तो शर्माजी का मन प्रफुल्लित हुआ. जाने की तैयारी में एक माह कैसे बीत गया, पता ही नहीं चला. सेवानिवृत्ति के पश्चात शर्माजी अकेले कहीं जा रहे थे, कहीं क्या, वो तो उस नगर जा रहे थे, जहां उनका बचपन बीता था. शर्माजी होटल में रुकना चाहते थे, किन्तु मित्र के बहुत जोर देने पर वह मित्र के घर ही रुक गए. सुबह चाय नाश्ते के बाद शर्माजी टहलते हुए निकले तो उन्हें एहसास हुआ कि उनकी स्मृति में जो धुंधली सी छवि थी इस नगर कि, वहाँ बहुत अधिक बदलाव हो गया है. नगर अब शहर हो गया है. अनायास ही उनके पाँव बढ़ चले उस ओर, जहां उनसे जुड़ी ढ़ेर सारी यादें उनकी राह देख रहीं थीं

शहर भले ही बदल गया हो, उनका पुराना मोहल्ला ज्यादा नहीं बदला था. कुछ देर की कदम ताल के पश्चात शर्माजी पहुंचे उस घर के सामने, जहां कभी वो किराए पर रहा करते थे. पर क्या था? आउट हाऊस था, ब्रिटिश

“घर के हालात दिन ब दिन खराब होते जा रहे थे. उन दिनों बैंक में लिपिक भर्ती के लिए आवेदन मांगे गए थे.”

समय का बड़ा बंगला, वहाँ कोई साहब रहते थे. बहुत बड़ी परिधि थी, बंगले के सामने उद्यान, जहां माली काम करता था, बंगले के पीछे आउट हाऊस था, जहां शर्माजी अपनी अम्मा और 6 भाई बहनों के साथ रहते थे, जब तक बाबूजी जीवित थे, सब ठीक ही था, पर उनके जाने के बाद अम्मा पर मानो दुखों का पहाड़ टूट पड़ा. अम्मा गाँव में पली बढ़ी थी, सो अशिक्षित थीं. घर चलाने के लिए उन्होंने लोगों के घर खाना बनाने का काम कर लिया. धीरे-धीरे गाड़ी चलती रही, उन दिनों स्कूल की फीस 10- 15 रुपए हुआ करती थी. अम्मा बड़ी मुश्किल से ही फीस जुटा पाती थीं. पढ़ाई में अच्छे होने के कारण प्रति वर्ष सभी भाई-बहन स्कॉलरशिप पाते थे, सो सभी की स्कूल की पढ़ाई पूर्ण हो पाई थी. शर्माजी ही परिवार में सबसे छोटे थे, तो सब पर खर्च होने के बाद जो बचता था, यही उनके लिए रहता था. स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण कर शर्माजी ने इंजीनियरिंग की भर्ती परीक्षा भी उत्तीर्ण की थी. शर्माजी बी. टेक. और एम. टेक. करना चाहते थे. परंतु अम्मा के पास पैसे नहीं थे फीस भरने के. बड़े भाई-बहन नौकरी में लग गए थे,

लेकिन वह सहायता करने से पीछे हट गए, तब मन मार कर शर्माजी ने बी. एससी में प्रवेश ले लिया. स्कॉलरशिप यहाँ भी मिल गई. साथ ही ट्यूशन भी कर लिया, ताकि दो पैसे मिल जाएंगे. पुस्तकें लाईब्रेरी से ही लेते थे या कभी किसी मित्र से मांग कर पढ़ लिया करते थे. बी. एससी. के पश्चात एम. एससी. में प्रवेश हेतु भी बहुत मिन्नतें करनी पड़ी थी अम्मा से. एम. एससी. फाइनल के समय अम्मा बहुत बीमार हो गई थीं. किसी तरह एम. एससी. की परीक्षा दी थी. घर के हालात दिन-ब-दिन खराब होते जा रहे थे. उन दिनों बैंक में लिपिक भर्ती के लिए आवेदन मांगे गए थे. लिपिक हेतु शैक्षणिक योग्यत्ता केवल स्नातक ही थी. कुछ माह पश्चात स्नातकोतर होने वाले थे शर्माजी. अधिकारी हेतु पात्र हो जाते, किन्तु इतना समय नहीं था. फिर से मन को समझा कर लिपिक हेतु आवेदन कर दिया.

अम्मा स्वर्ग सिधार गई. शर्माजी अनाथ हो गए थे. शर्माजी एम. एससी. की परीक्षा उत्तीर्ण कर गए. कुछ दिनों बाद बैंक में लिपिक की नौकरी भी मिल गई और तैनाती दूसरे शहर में हो गई. अत्यंत दुखी मन से शर्माजी, जो 40 साल पहले यहाँ से निकले, फिर मुड़ के नहीं देखा, जीवन में और कोई भी आकर्षण नहीं था, सो अपने कार्य के प्रति समर्पित हो गए. अधिकारी बनने की इच्छा थी मन में, सो खूब मेहनत की और कुछ वर्षों पश्चात अधिकारी भी हो गए. समय से विवाह हुआ और एक सुंदर सुशील जीवन संगिनी ने उनके मकान को घर बना दिया.

शर्माजी अपने कैरियर में आगे बढ़ते गए. साथ ही पति से पिता हो गए. पहले एक पुत्री और फिर एक अत्यंत प्रतिभाशाली पुत्र के आगमन से परिवार पूरा हो गया. किराए का मकान मन व्यथित करता था, सो बैंक से लोन लेकर अपना घर बनाया, फिर चौपहिया वाहन ली, भौतिक सुख सुविधाओं की कमी नहीं थी. शर्माजी के आँखों के सामने जैसे उनके जीवन का यह भाग किसी फिल्म के फ्लैश बैक की भांति आ गया.

तभी सामने वाले बंगले का दरवाजा खुला तो मानो शर्माजी की तंद्रा टूटी हो. अपने मन को किसी तरह संभालते हुए वह वापिस मित्र के घर की ओर चल पड़े. रियूनियन की पार्टी रात को थी, एक अच्छे से होटल में व्यवस्था की गई थी, शर्माजी के मित्र पूरी व्यवस्था देख रहे थे, तो पहले ही निकल लिए थे. तय समय में शर्माजी भी होटल पहुंच गए.

नौकरी के दौरान बहुत आधिकारिक पार्टियों में उपस्थिति दी थी. लेकिन यह पार्टी कुछ और ही जान पड़ रही थी. धीर-धीरे लोग भी आने लगे और साथ ही आने लगी ढेर सारी यादें. सभी पुरुष सहपाठी आ पाये थे, महिलाओं की संख्या कम ही थी. स्नातक के दिनों में लंबे बाल और बेल बाटम पैंट धारण करने वाले सभी व्यक्ति बहुत बदल गए थे. किसी के सिर पर बाल नहीं थे तो किसी

की तोंद निकल आई थी. प्रारम्भ में ही सभी सतही तौर पर बातें करते रहे, जैसे-जैसे शाम बढ़ने लगी लोग खुलने लगे. आखिर पुराने मित्र जो थे. स्नातक के सहपाठी कमलेश जी और शर्माजी एक ही बैंक में लिपिक संवर्ग में नियुक्त हुए थे. कमलेश जी लिपिक संवर्ग से ही सेवानिवृत हुए थे. कॉलेज के दिनों में शर्माजी की गरीबी का मजाक करने वाले कमलेश ने आज शर्माजी की बहुत प्रशंसा की. बताया कि कैसे उनके द्वारा लिए गए कठोर एवं साहसी निर्णयों ने बैंक एवं कर्मचारियों का हित किया. मोहन, जो शर्माजी के घनिष्ठ मित्रों में से थे, आज बहुत दुखी थे, क्यूंकि उनकी बेटी को ससुराल में बहुत कष्ट था. राघव ने बताया कि उन्होंने बेटे बहू के दुर्व्यवहार से परेशान हो वृद्धाश्रम का सहारा लिया है. कॉलेज के दिनों में पहलवान कहलाने वाले सुमित अत्यधिक निर्बल लग रहे थे, उन्हें गंभीर बीमारी हो गई थी. अशोक के दोनों बेटे अपनी नौकरी हेतु विदेश रहते थे. अशोक और उनकी पत्नी केवल एक दूसरे के भरोसे ही चल रहे थे. विनय ने प्राइवेट संस्था में ही नौकरी की थी. सेवानिवृत्ति के पश्चात उन्हें कोई पेंशन नहीं मिल रही थी, इसलिए गुजर बसर हेतु विनय ने एक किराना दुकान लगा ली थी.

शर्माजी सबसे मिले, किन्तु उन्हें एक की कमी खल रही थी. आकाश दिखाई नहीं दे रहे थे, आकाश कॉलेज का टॉपर था. शर्माजी और आकाश में सदैव ही प्रतिस्पर्धा चलती थी. स्नातक में कुछ अंकों के कारण शर्माजी ने द्वितीय स्थान प्राप्त किया था. स्नातकोतर हेतु आकाश एम. टेक करने चले गए थे. सुना था बहुत ऊंचे पद पर नौकरी करते हैं. किसी से पूछा तो पता चला कि आकाश अब जीवित नहीं रहें. ऊंचे पद के बड़े-बड़े दायित्वों को निभाते हुए उन्होंने अपने स्वास्थ्य को नज़र अंदाज कर दिया और 5 वर्ष पूर्व ही उनकी मृत्यु हो गई थी.

“तुम बहुत लकी हो यार शर्मा, तुम्हारे तो सारे सपने पूरे हो गए”, पार्टी की समाप्ति पर कमलेश शर्माजी से कहते हुए गए, अगले दिन शर्माजी की वापसी थी. सुबह 10 बजे की ट्रेन थी. पास के शहर तक, जहां एयर-पोर्ट उपलब्ध था. शर्माजी ट्रेन से ही जाना चाहते थे, सीनियर सिटिजन का भाड़ा कम लगता है, किन्तु उनके पुत्र ने प्लेन की टिकट करवाया बोला नींद तो घर में होनी चाहिए, कमलेश की कही हुई बातें शर्माजी के अंदर मानो तुफान बन चल रहीं हो. बार-बार सोचते हैं कि कमलेश आखिर ऐसा क्यों कह रहा, बचपन में कभी सोचा नहीं था कि प्लेन में जाना होगा तब तो केवल दो समय का खाना ही महत्वपूर्ण जान पड़ता था. पहली पगार से कुछ अच्छा खाया था, जब एक नई कमीज खरीदी थी. जब वो पहला आर. डी. किया था और जब मकान बनाने के लिए ऋण लिया था. पहला मकान बनाए कुछ 28 साल हो रहे थे. दुपहिया, चौपहिया सब का सुख हो गया था. जो स्वयं बचपन में नहीं पाया, सब कुछ बच्चों को दिया.

अपने काम की व्यस्तता में घर को अधिक समय नहीं दे पाये, किन्तु उनकी जीवन संगिनी ने बच्चों की ओर पूरा ध्यान दिया बच्चों का लालन- पालन, शिक्षा, संस्कार सब उनके ही कारण तो है. स्वयं का बैंक में परिवीक्षाधीन अधिकारी होने का सपना था, सो पुत्री बैंक में परिवीक्षाधीन अधिकारी नियुक्त हुई थी. कभी इंजीनियर बनने का सपना था, सो पुत्र को इंजीनियर बनाया था. बच्चों के द्वारा स्वयं के स्वप्न तो पूरे हो ही गए थे. पुत्र अच्छे पद पर कार्यरत है और माँ बाबूजी का मान भी करता है. पुत्री और दामाद अपने घर में खुश हैं. भौतिक सुख-सुविधाएं हों या प्रेम आदर, सब कुछ बहुत अच्छा था.

शर्माजी को अचानक ऐसा लगा, जैसे कमलेश सही कह रहे थे. उनके तो सारे ही सपने पूरे हो गए थे. बस अभी तक इन सब बातों पर ध्यान नहीं दे पा रहे थे. आँखों पर जैसे एक पर्दा पड़ा हुआ था. आज सब साफ-साफ दिख रहा था. वो आउट हाऊस वाले कठिन जीवन से इस एयरपोर्ट तक का सफर उनके सामने कड़ी से कड़ी जोड़ते हुए खड़ा था जैसे. पहली बार शर्माजी ने अपने संघर्ष को नापा था, आज जान पड़ा था कि क्या-क्या हासिल हो गया जीवन में. आज शर्माजी स्वयं को अत्यंत धनी पा रहे थे. शर्माजी ने पहली बार अपने जीवन को लम्बी दूरी में देखा था. मन में असीम शांति और हर्ष का अनुभव हो रहा था उन्हे. शर्माजी की फ्लाइट की उद्घोषणा हो गयी थी.

सेवानिवृत्ति पर जीवन में रिक्तता का बोध प्रायः सभी व्यक्ति करते हैं. सामान्यतः यह एक कठिन परिस्थिति होती है और कई बार भावनात्मक संकट जैसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है. ऐसे में इस स्थिति का दूसरा पक्ष देखना भी आवश्यक हो जाता है. सारा जीवन काम की व्यस्तता और दौड़ धूप के पश्चात सेवानिवृत्ति पर व्यक्ति अक्सर पाता है अपने जीवन को ढील प्रदान करने का. जीवन की सांझ दुखी या उदास होने की नहीं, वरन् सारे जीवन की मेहनत के उपरांत जो फल प्राप्त होते हैं, उनका उपभोग करने की है. अगर आप अपने जीवन को फिल्म की तरह से देखेंगे, तो आप पाएंगे कि क्या खोया क्या पाया और यकीन मानिए, कम खोया ज़्यादा पाया है.

मशहूर हास्य अभिनेता श्रीमान चार्ली चैपलिन के वाक्यों में कहें तोः "Life is a tragedy when seen in close up, but a comedy in long shot.''

तो दीजिये मौका जीवन की साँझ को खुश होने का खिलखिला कर हंसने का. सांझ तो दूसरी पारी की शुरुआत है. बस जीवन के इस अध्याय में आपकी भूमिका कुछ बदल जाती है.

शिल्पा शर्मा सरकार

■■■

मन की सुंदरता

संदीप ने एमबीए करने के बाद एक कम्पनी में मार्केटिंग की नौकरी कर ली थी एक बार कम्पनी के काम से वह जयपुर गया था, वहां उसका दोस्त आदिल रहता था. बचपन में दोनों साथ-साथ खेले और पढ़े थे, जयपुर पहुंचते-पहुँचते रात ज्यादा हो गई, इतनी रात को होटल देखने में दिक्कत थी, इसलिए संदीप ने आदिल को फोन किया, थोड़ी देर घंटी बजने के बाद आदिल की गुस्से से भरी आवाज सुनाई दी.

दोस्त हो कर दुश्मनी निभा रहा है, क्यों नींद खराब कर रहा है. अरे सुबह ही फोन लगा लेता तो तेरा कुछ बिगड़ जाता?

संदीप ने हंसते हुए कहा: "भाई बात ही कुछ ऐसी हो गई है और मैं तेरे शहर में ही हूँ, ठिकाना चाहिए"

अब आदिल ने कहा: अगर ऐसी बात है तो सीधे घर आ जा, तेरे लिए गरमा-गरम पराठे बनवा कर रखता हूँ.

बड़ी मुश्किल से एक ऑटो मिला, उससे संदीप, आदिल के घर पहुंचा, कॉल बेल बजाने पर एक बूढ़ी निगाह से उसका सामना हुआ. अपनी याददाश्त पर जोर देते हुए संदीप समझ गया कि यह आदिल की अम्मी ही होगी. चश्मा नाक पर ऊपर चढ़ाते हुए, उन्होंने कहा "कौन है बेटा, इतनी रात को" संदीप कुछ कहता, इसके पहले ही आदिल आ गया और बोला "अम्मी यह संदीप है, भोपाल में शाहजानाबाद में हमारे घर के पीछे रहता था और जब यह छोटा था अपने घर से भाग कर हमारे यहां आ जाता था, तुम्हारे हाथ की गरम गरम पकौड़ी खाने. . ."

संदीप ने अम्मी के पैर छुए और सब हँस दिया आदिल ने कहा: "तू फ्रेश होकर आ, तब तक खाने का इंतजाम करता हूँ" अम्मी की आँखों से वात्सल्य बह रहा था, उन्हें अपनी पुरानी यादें ताजा हो गई थी और उन्होंने पराठे के साथ पकौड़ी भी बनाई.

बच्चों की छुट्टियां थीं, इसलिए आदिल की पत्नी समीना और बच्चे अजमेर ननिहाल गये थे.

सुबह जल्दी उठ कर संदीप अपने काम पर चला गया और आदिल अपने आफिस इस बीच अम्मी घर पर रह गई थीं. सदीप काम निपटा कर करीब 4 बजे घर पहुंचा तब अम्मी, सिलाई मशीन पर कपड़े सी रही थीं. कपड़े सिलवाने वाली महिलाएं वहां बैठी थी. संदीप को बुरा लगा कि इतनी उम्र में अम्मी कपड़े सीने का काम कर रही है, तो क्या आदिल की तनख्वाह कम है, जिससे घर का गुजर बसर नहीं हो पाता, इसलिए. . . .

संदीप कपड़े बदल कर कमरे में आ गया, इस बीच अम्मी, उन महिलाओं के जाने के बाद खाना लगा कर ले आई.

संदीप के मन मस्तिष्क में अम्मी को ले कर घमासान अब भी चल रहा था, उससे आखिर रहा नहीं गया और बोला, "अम्मी आप इस उम्र में भी इतना काम करती है, घर में काम करने के लिए कोई नौकर नहीं है और इस पर भी आप यह कपड़े सीने का काम भी करती है, क्या. . . .

"एक बार रात का खाना खाते समय अम्मी बता रही थीं कि बड़ी होनहार लड़की है सुनीता. पढ़ाई लिखाई और दूसरे कामों में उसकी कोई बराबरी नहीं कर सकता."

संदीप की बात बीच में काटते हुए अम्मी बोली. "बेटा, जैसा तुम सोच रहे हो, ऐसा कुछ नहीं है, दरअसल काम करते रहने से शरीर पर उम्र का जोर नहीं चलता है और ऐसा लगता है कि जीने का कोई मकसद है."

अम्मी के तजुर्बे के आगे संदीप कुछ नहीं बोल पाया, लेकिन उसे जिन्दगी का एक सबक मिल गया था.

एक दिन जब संदीप लौटा, तब बिस्तर पर निढाल-सा गिर गया. इससे अम्मी घबरा गई और पड़ोस में रहने वाली सुनीता को आवाज लगाई, सुनीता ने संदीप को छू कर देखा तो उसका शरीर ताप से जल रहा था. सुनीता के स्पर्श से संदीप ने आंख खोल कर देखा, एक लड़की जिसके चेहरे को कई दागों ने बिगाड़ दिया था सामने बैठी थी, अब तक वह ठंडा पानी बरतन में ले आई थी और टावल को भिगो कर उसके सिर पर रख रही थी. इससे संदीप का बुखार कम हो गया शाम को आदिल आया और डाक्टर को दिखा कर दवाई ली. डाक्टर ने बताया कि संदीप को वायरल हो गया है. अब अम्मी रोज ही सुनीता

को बुला लेती, जो संदीप की भी देखभाल करती.

एक बार रात का खाना खाते समय अम्मी बता रही थीं कि बड़ी होनहार लड़की है सुनीता. पढ़ाई लिखाई और दूसरे कामों में उसकी कोई बराबरी नहीं कर सकता. सुनीता अपने काम से काम रखती थी. इन्हीं खूबियों के कारण कालेज के कुछ लड़के उसके दुश्मन बन गये और एक दिन कुछ बदमाश लड़कों ने उसके चेहरे पर ऐसिड डाल दिया, इस कारण इसका चेहरा बिगड़ गया है. लेकिन इसने हार नहीं मानी और अपनी मंजिल पर आखिर पहुंच ही गई, यह नौकरी के लिए कोशिश कर रही है, लेकिन सबसे बड़ी समस्या इसकी शादी की है, सब इसका चेहरा देखते हैं.

संदीप अभी तक तो इस बारे में सुनता ही रहा था, लेकिन आज एक साक्षात उदाहरण उसके सामने सुनीता थी. वह सोचने लगा "शादी ब्याह में चेहरे की सुन्दरता की कसौटी क्यों है, इस आधार पर लड़कियों को बेइज्जत करना उचित नहीं है, अगर शादी के बाद पति या पत्नी में से किसी के साथ कोई हादसा हो जाए तब क्या वह एक दूसरे को छोड़ देंगे?"

तभी आदिल ने कहा: "अरे संदीप कहां खो गया, यह तो दुनियादारी है, सब चलता है, सुनीता की हिम्मत के आगे सब पीछे छूट गये हैं और कई दबाव के बावजूद उसने हिम्मत नहीं हारी और आज वह बदमाश जेल में है"

सुनीता के बारे में एक के बाद एक रहस्योद्घाटन सुन कर वह आश्चर्यचकित था. . . अम्मी ने फिर कहा बेटा, अपने आपको अच्छा दिखाने वाले तो बहुत दिख जाते हैं अंत आने पर वह पीछे हट जाते हैं, यही सुनीता के साथ हो रहा है इन सब बातों ने संदीप को झकझोर दिया था. रात को सोते हुए संदीप सोच रहा था शारीरिक सौन्दर्य तो ऊपरी है, असली सौन्दर्य तो सहृदयता में है.

सुनीता की आँखों का खालीपन लिए संदीप जयपुर से वापिस आ गया. उसकी आंखों के आगे हमेशा सुनीता का चेहरा घूमता रहता, इसी के साथ अम्मी की बातें भी उसे रह रहकर याद आती कि अपने आपको अच्छा दिखाने और विचार रखने वाले तो बहुत मिल जाते हैं पर वक्त आने पर पीछे हो जाते हैं.

भोपाल आने के बाद संदीप के लिए रिश्ते आ रहे थे, लेकिन संदीप हर रिश्ते में कुछ न कुछ कमी बता कर बात टाल देता था. हालांकि सुनीता के साथ उसके कोई ज्यादा धनिष्ठ संबंध नहीं थे, परन्तु एक दिली हमदर्दी उसके प्रति थी. संदीप कई बार सोचता. जो घटना सुनीता के साथ हुई है उसे लेकर वह सुनीता के प्रति दया भाव तो नहीं रखता है? यदि यह दया भाव के कारण सुनीता से शादी का निर्णय लेगा तब यह उसे जिन्दगी में बराबरी का दर्जा नहीं दे पाएगा, वह बात-बात पर उसे उसकी कमजोरी बताएगा और एहसान लादेगा,

जिससे सुनीता अपनी हीन भावनाओं से कभी उबर नहीं पायेगी. इसलिए पहले उसे अपने मन में सुनीता के प्रति सम-भाव लाने होंगे, सुनीता को अपने पास बैठाने के स्थान पर उसे सुनीता के पास बैठने लायक बनना होगा.

संदीप के मन में इन विचारों का संघर्ष अक्सर चला करता था.

वक्त तेजी से गुजरता जा रहा था और वह अक्सर जयपुर दौरे पर भी जाता रहता था यह आदिल के घर जरूर जाता और जब उसे यह मालूम पड़ता कि सुनीता की शादी तय नहीं हुई है तब उसे दिली सुकून मिलता.

इस बीच एक दिन आदिल की पत्नी समीना ने पूछ ही लिया: "भाईजान आपके दिल में जो है, बता दीजिये, वैसे सुनीता, अच्छी लड़की है, बशर्ते आपके घर वाले उसे स्वीकारने के लिए तैयार हो जायें.

संदीप ने कहा "भाभी जी आप सही कह रही हैं, मंजिल मुश्किल है और अभी मैं अपने आपको इन परिस्थितियों के लिए तैयार नहीं कर पा रहा हूँ, पर इतना तय है कि मैं शादी करूंगा तो सुनीता से ही.

समीना ने कहा "भाईजान मैं दुआ करूंगी, आपकी तमन्ना पूरी हो और इस बीच में भी सुनीता से भी बात करती हूँ कि उसके दिल में क्या है?" एक बार समीना ने संदीप को खबर दी कि अगले महीने की तीसरी तारीख को सुनीता भोपाल आ रही है और डी वी मॉल में उसे शाम को सात बजे मिलेगी सुनीता कह रही थी: संदीप जी मैंने जिन्दगी को बहुत करीब से देखा और समझा है, इसलिए मैंने यह निश्चय किया था कि मैं उसी लड़के से शादी करूंगी जो मुझे बिना देखे पसंद करे और शादी के लिए तैयार हो. संदीप जी आप सोच रहे होंगे कि मैं शादी करना नहीं चाहती. लेकिन सच्चाई मैं ही जानती हूँ कि मुझे कोई पसंद नहीं करेगा, इसका मुझे कोई गुमान भी नहीं है क्योंकि मैं किसी के ऊपर बोझ नहीं हूँ, बल्कि दृढ़ता से खड़ी हूँ.

इसके बाद सुनीता फीकी-सी मुस्कान के साथ चुप हो गई.

संदीप ने कहा: सुनीता जी मैं आपकी भावनाओं की इज्जत करता हूँ और कोशिश करूंगा कि जल्दी ही आपकी कसौटी पर खरा उतर सकूँ.

एक दिन संदीप की माँ ने कहा: बेटा, अब मेरी उम्र तो ढलान पर है, तेरे हाथ भी पीले हो जायें तो ज़िंदगी सुकून से कट जाए, अगर तुझे कोई लड़की पसंद है तो बता देना, बस परिवार और इज्जत का ध्यान रखना.

बहुत ना-नुकुर के बाद संदीप ने कहा: माँ मुझे जयपुर में एक लड़की पसंद है, हम शादी करना चाहते हैं और हाँ शादी हो जाने तक कोई लड़की का चेहरा नहीं देखेगा यह मेरी शर्त है.

संदीप ने शादी के लिए हाँ कर दी यह बात सबके लिए बहुत थी, अब जहां तक रही

लड़की की बात तो आजकल के लड़के सुन्दर लड़की ही पसंद करते हैं, वह भी नौकरी चाकरी वाली इनमें किसी को कोई शक नहीं था.

घर में खुशियों की बहार आ गई.

फिर भी संदीप की भाभी ने कहा, भईया जो रीति रिवाज अपने यहां होते हैं वह तो करेंगे ही और फिर एक ही तो देवर हैं, मैं अपने अरमान पूरे करूंगी."

तभी मंजरी ने संदीप को झकझोरते हुए कहा: सुनीता क्या इतनी सुन्दर है कि आप हमेशा उसकी याद में खो जाते हो, अरे! हमें भी मालूम है कि भाई गुलाबी शहर की गुलाबी लक्ष्मी ला रहे हैं.

इसके बाद एक साथ कई लोगों के हंसने की आवाज से संदीप धरातल पर आ गया. सब लोगों में यह रहस्य बना हुआ था कि संदीप किसी को शादी से पहले सुनीता को दिखा क्यों नहीं रहा है? इसलिए बुआ जी ने एक दिन संदीप से पूछ ही लिया.

बिटूआ बहू सुन्दर तो है न, जैसी हमारे यहां दूसरी बहुएँ हैं, नाक तो नहीं कटवायेगा न.

बुआ जी सोच रहीं थीं कि उनकी बहुओं से ज्यादा सुन्दर, संदीप की दुल्हन नहीं होनी चाहिए, उन्हें तो इसी बात की ईर्ष्या थी, संदीप सब को एक ही जबाव दे रहा था."

सुनीता जब घर आये तब देख लेना.

बुआ जी को एक तरफ अपनी बहुओं की सुन्दरता का घमंड था परन्तु दूसरी तरफ दिल में एक दर्द भी था कि उन्होंने उनका बना बनाया घर उजाड़ दिया था.

सुनीता, संदीप से शादी के बाद भोपाल आ गई थी. सब रस्में पूरी होने के बाद, मुंह दिखाई की रसम शुरू होने जा रही थी. सब रिश्तेदार मुंह दिखाई का नेग ले कर आ गये.

सबसे पहले संदीप की माँ ने सुनीता का घूँघट उठाया और संदीप को खा जाने वाली निगाह से देखते हुए, नेग वहीं पटक दिया इसके बाद सभी यही कर रही थीं, अब तो बुआ जी की खुशी का ठिकाना नहीं था.

लेकिन ऊपर से दिखाने के लिए वह बोलीं : बिटुआ हम तो सोच रहे थे कि तुम गुलाबी फूल लाओगे पर तुमने तो गुलाबी शहर को ही बदनाम कर दिया.

संदीप ने कहा: "जिन्दगी मुझे गुजारनी है और मन की सुन्दरता ही जीवन की सुन्दरता है, बस मुझे और कुछ नहीं कहना"

संतोष श्रीवास्तव

■■■

जिंदगी इतनी आसान कहां...

एक दिन मैं एक घर के करीब से गुज़र रहा था कि अचानक मुझे उस घर के अंदर से एक बच्चे के रोने की आवाज आई. उस बच्चे की आवाज में इतना दर्द था कि अंदर जा कर वह बच्चा क्यों रो रहा है, यह मालूम करने से मैं खुद को रोक न सका.

अंदर जा कर मैंने देखा कि एक माँ अपने दस साल के बेटे को आहिस्ता से मारती और बच्चे के साथ खुद भी रोने लगती. मैंने आगे होकर पूछा "बहनजी आप इस छोटे से बच्चे को क्यों मार रही हो? जबकि मारने के बाद आप खुद भी रोती हो."

उसने जवाब दिया "भाई साहब इसके पिताजी भगवान को प्यारे हो गए हैं और हम लोग बहुत ही गरीब हैं, उनके जाने के बाद में लोगों के घरों में काम करके घर और इसकी पढ़ाई का खर्च बामुश्किल उठाती हूँ और यह कमबख्त स्कूल रोज़ाना देर से जाता है और रोज़ाना घर देर से आता है. जाते हुए रास्ते में कहीं खेल कूद में लग जाता है और पढ़ाई की तरफ जरा भी ध्यान नहीं देता है, जिसकी वजह से रोजाना अपनी स्कूल की वर्दी गंदी कर लेता है." मैंने बच्चे और उसकी माँ को जैसे-तैसे बहुत समझाया और चल दिया.

इस घटना को कुछ दिन ही बीते थे कि एक दिन सुबह-सुबह कुछ काम से मैं सब्जी मंडी गया, तो अचानक मेरी नज़र उसी दस साल के बच्चे पर पड़ी, जो रोजाना घर से मार खाता था. मैं क्या देखता हूँ कि वह बच्चा मंडी में घूम रहा है और जो दुकानदार अपनी दुकानों के लिए सब्ज़ी खरीद कर अपनी बोरियों में डालते तो उनमें कुछ सब्जी जमीन पर गिर जाती थी, वह बच्चा उसे फौरन उठा कर अपनी झोली में डाल लेता है.

मैं यह नजारा देख कर परेशानी में सोच रहा था कि आखिर यह चक्कर क्या है, मैं उस बच्चे का चोरी-चोरी पीछा करने लगा. जब उसकी झोली सब्जियों से भर गई तो यह सड़क के किनारे बैठ कर उसे ऊंची-ऊंची आवाजें लगा कर बेचने लगा, मुंह पर मिट्टी, गंदे कपड़े और आंखों में नमी, ऐसा महसूस हो रहा था कि ऐसा दुकानदार जिंदगी में पहली बार देख रहा हूँ.

अचानक एक आदमी अपनी दुकान से उठा, जिसकी दुकान के सामने उस बच्चे ने अपनी नन्ही सी दुकान लगाई थी. उसने आते ही एक जोरदार लात मार कर उस नन्ही दुकान को एक ही झटके में रोड पर बिखेर दिया और बाजुओं से पकड़ कर उस बच्चे को भी उठाकर धक्का दे दिया. वह बच्चा आंखों में आंसू लिए चुपचाप दोबारा अपनी सब्ज़ी को इकट्ठा करने लगा और थोड़ी देर बाद अपनी सब्ज़ी एक दूसरे दुकान के सामने डरते-डरते लगा ली. भला हो उस शख्स का जिसकी दुकान के सामने इस बार उसने अपनी नन्ही दुकान लगाई, उस शख्स ने बच्चे को कुछ नहीं कहा.

थोड़ी सी सब्ज़ी थी, ऊपर से बाकी दुकानों से कम कीमत. जल्द ही बिक्री हो गयी और वह बच्चा उठा और बाजार में एक कपड़े वाली दुकान में दाखिल हुआ और दुकानदार को कुछ पैसे देकर दुकान में पड़ा अपना स्कूल बैग उठाया और बिना कुछ कहे वापस स्कूल की ओर चल पड़ा. मैं भी उसके पीछे-पीछे चल रहा था. बच्चे ने रास्ते में अपना मुंह धोया और वह स्कूल चल दिया. मैं भी उसके पीछे स्कूल चला गया, जब वह बच्चा स्कूल गया तो एक घंटा लेट हो चुका था. जिस पर उसके टीचर ने डंडे से उसे खूब मारा, मैंने जल्दी से जाकर टीचर को मना किया कि मासूम बच्चा है इसे मत मारो. टीचर कहने लगे कि यह रोज़ाना एक डेढ़ घण्टे लेट से ही आता है और मैं रोज़ाना

> **बहनजी, आप मेरे साथ चलो मैं आपको बताता हूँ कि आप का बेटा स्कूल क्यों देर से जाता है.**

इसे सजा देता हूँ कि डर से स्कूल वक़्त पर आए और कई बार मैं इसके घर पर भी खबर दे चुका हूँ.

खैर, बच्चा मार खाने के बाद क्लास में बैठ कर पढ़ने लगा. मैंने उसके टीचर का मोबाइल नंबर लिया और घर की तरफ चल दिया. घर पहुंच कर एहसास हुआ कि जिस काम के लिए सब्जी मंडी गया था वह तो भूल ही गया. मासूम बच्चे ने घर आ कर माँ से एक बार फिर मार खाई होगी. यही सोचकर सारी रात मेरा सर चकराता रहा. सुबह उठकर फौरन बच्चे के टीचर को कॉल किया कि हर हालत में मंडी पहुंचे और वो मान गए, सूरज निकला और बच्चे का स्कूल जाने का वक्त हुआ और बच्चा घर से सीधा मंडी अपनी नन्ही सी दुकान का इंतजाम करने निकला.

मैंने उसके घर जाकर उसकी माँ को कहा कि "बहनजी, आप मेरे साथ चलो मैं आपको बताता हूँ कि आप का बेटा स्कूल क्यों देर से जाता है. " वह फौरन मेरे साथ यह कहते हुए चल पड़ीं कि "आज इस लड़के की मेरे हाथों खैर नहीं. छोड़ूंगी नहीं उसे आज." मंडी में लड़के का टीचर भी आ चुका था. हम तीनों ने मंडी की तीन जगहों पर पोजीशन संभाल ली और उस लड़के को छुप कर देखने लगे. आज भी उसे

काफी लोगों से डांट फटकार और धक्के खाने पड़े, और आखिरकार वह लड़का अपनी सब्ज़ी बेच कर कपड़े वाली दुकान पर चल दिया.

अचानक मेरी नज़र उसकी माँ पर पड़ी तो क्या देखता हूँ कि वह बहुत ही दर्द भरी सिसकियां लेकर लगातार रो रही थी और मैंने फौरन उसके टीचर की तरफ देखा तो उनके भी आंसू बह रहे थे. दोनों के रोने में मुझे ऐसा लग रहा था जैसे उन्होंने किसी मासूम पर बहुत जुल्म किया हो और आज उनको अपनी गलती का एहसास हो रहा है.

उसकी माँ रोते-रोते घर चली गयी और टीचर भी सिसकियां लेते हुए स्कूल चला गया. बच्चे ने दुकानदार को पैसे दिए और आज उसको दुकानदार ने एक लेडी सूट देते हुए कहा कि "बेटा, आज सूट के सारे पैसे पूरे हो गए हैं. " अपना सूट ले लो, बच्चे ने उस सूट को पकड़ कर स्कूल बैग में रखा और स्कूल चला गया.

आज भी उसे एक घंटा देर हो गयी थी. वह सीधा टीचर के पास गया और बैग डेस्क पर रख कर मार खाने के लिए उसने अपनी पोजीशन संभाल ली और हाथ आगे बढ़ा दिया. टीचर कुर्सी से उठा और बच्चे को गले लगा कर इस क़दर ज़ोर से रोया कि मैं भी देख कर अपने आंसुओं पर काबू न रख सका. मैंने अपने आप को संभाला और आगे बढ़कर टीचर को चुप कराया और बच्चे से पूछा कि यह जो बैग में सूट है वह किसके लिए है. बच्चे ने रोते हुए जवाब दिया कि मेरी माँ अमीर लोगों के घरों में मजदूरी करने जाती है और उसके कपड़े फटे हुए होते हैं. कोई जिस्म को पूरी तरह से ढ़कने वाला सूट नहीं हैं और मेरी माँ के पास पैसे नहीं हैं इसलिए अपनी माँ के लिए यह सूट खरीदा है. "तो यह सूट अब घर ले जाकर माँ को आज दोगे?" मैंने बच्चे से सवाल पूछा. जवाब ने मेरे और उस बच्चे के टीचर के पैरों के नीचे से ज़मीन ही खींच ली. बच्चे ने जवाब दिया, "नहीं अंकल, छुट्टी के बाद मैं इसे दर्जी को सिलाई के लिए दे दूँगा. रोज़ाना स्कूल से जाने के बाद काम करके थोड़े-थोड़े पैसे सिलाई के लिए दर्जी के पास जमा किये हैं. "

टीचर और मैं सोच कर रोते जा रहे थे कि आखिर कब तक हमारे समाज में गरीबों और विधवाओं के साथ ऐसा होता रहेगा? उनके बच्चे त्योहार की खुशियों में शामिल होने के लिए कब तक जलते रहेंगे. आखिर कब तक?

क्या ऊपर वाले की खुशियों में इन जैसे गरीब विधवाओं का कोई हक नहीं? क्या हम अपनी खुशियों के मौके पर अपनी ख्वाहिशों में से थोड़े पैसे निकाल कर अपने समाज में मौजूद गरीब और बेसहारों की मदद नहीं कर सकते? और हाँ, अगर इसे पढ़कर आँखें भर आई हो तो छलक जाने देना, संकोच मत करना, और समाज में ऐसे गरीबों की मदद के लिए आगे ज़रूर आना.

अमित महतो

■■■

प्रेम और ज्ञान

एक तो ढंग है प्रेम का और एक ढंग है ज्ञान का. ज्ञान से विज्ञान पैदा हुआ और विज्ञान से तकनीक पैदा हुई. प्रेम से भक्ति पैदा होती है और भक्ति से भगवान पैदा होते हैं. ज्ञान के मार्ग से जो चलता है, वह कहीं न कहीं विज्ञान में भटक जाता है. इसलिए तो पश्चिम विज्ञान में भटक गया और मनुष्यता अणु बम तक पहुँच गई. पूरब प्रेम से चला तो उसने समाधि खोज ली. उसने ऐसा आकाश खोजा जहां सब भर जाता है, सब पूरा हो जाता है लेकिन पश्चिम के हाथों कुछ सार नहीं आया. अब तो पश्चिम अपने ही ज्ञान से परेशान है. मजा यह है कि ज्ञानी सदा प्रेमी पर हँसता है लेकिन यह प्रेमी ही है जो पाता है. आइए, इस बोधकथा से समझने का प्रयास करें.

एक राजा को दो जुड़वा बेटे थे. एक का नाम था "ज्ञान" और दूसरे का नाम था "प्रेम". चूंकि दोनों बेटे एक ही उम्र के थे और समान रूप से मेधावी और प्रतिभाशाली भी थे. अतः राजा यह निर्णय नहीं कर पा रहा था कि किसे वह अपना राज सौंपे, उसका मन बड़ी दुविधा में था कि कहीं अन्याय न हो जाए. उसने एक फकीर के सामने अपनी दुविधा रखते हुए अपनी समस्या का समाधान पूछा. उस फकीर ने कहा कि "दोनों को यह कह दो कि जो पूरी दुनिया में बड़े-बड़े नगरो में पाँच सालों के भीतर अपनी कोठियां बनाने में सफल हो जाएगा, उसे ही राज्य का उत्तराधिकारी बनाया जाएगा."

ज्ञान ने कोठियां बनानी शुरू कर दी लेकिन पाँच साल में पूरी दुनिया के नगरों में कोठियां बनाना असंभव कार्य था. वह कुछ कोठियां ही बनवा पाया और उसका धन भी खत्म हो गया और सामर्थ्य भी. वह थककर परेशान हो गया. उसे लगा कि यह मूर्खतापूर्ण कार्य है. पाँच सालों के बाद जब दोनों बेटे लौटे तो ज्ञान थका-मांदा व भिखारी सी स्थिति में लौटा. कुछ कोठियां तो उसने जरूर बना ली थीं मगर वह बड़ा पराजित और विषादग्रस्त लौटा. वहीं दूसरा बेटा प्रेम नाचता हुआ और प्रसन्न लौटा. पिता ने उससे पूछा, "कोठिया बनाई? तो प्रेम ने कहा, "बना दी और पूरी दुनिया के बड़े नगरों में ही नहीं बल्कि छोटे-छोटे कस्बों में भी आपके लिए कोठियों की व्यवस्था कर दी है". पिता थोड़ा चौंके और उन्होंने कहा, "तेरा भाई ज्ञान थक हार कर कुछ नगरों में ही कोठियां बनवा पाया और तुमने पूरी पृथ्वी पर कोठियां कैसे बना ली?" प्रेम बोला "मैंने हर नगर, हर कस्बे में मित्र बनाए. सभी मित्रों की कोठियां मेरे लिए खुली हैं. जिस गाँव नगर में जाऊं मेरे लिए एक नहीं तीन-तीन कोठियां मौजूद हैं. भाई हैं कोठी बनाने में लग गया, इसलिए चूक गया और मैंने मित्र बनाए तो मैं सफल हो गया. आप जहां चाहे वहाँ आपके लिए कोठी की व्यवस्था वैसे ही है जैसी आपकी अपनी कोठी में है.

सुप्रिया सिंह

■■■

पगला कहीं का !

गौरी समुद्र के किनारे खड़ा था और अपने मुंह से कुछ अजीब-अजीब सी आवाजें निकाल कर इधर दौड़ता कभी और कभी उधर. यह उसके लिए तो रोज़ का काम था और जो जानते थे उन्हें आश्चर्य नहीं होता था. परंतु समुद्र के किनारे घूमने आए कई पर्यटकों को यह बहुत अजीब लगता था कि एक व्यक्ति समुद्र के किनारे यह सब क्या करता रहता है और क्यों ऐसी आवाजें निकालता है.

यह मुझे तब पता चला जब मैं भी एक बार नॉर्वे की राजधानी ओस्लो गया और समुद्र किनारे घूमने गया. तो मुझे भी बहुत आश्चर्य हुआ उसे देख कर. सुबह-सुबह का समय था, मैंने उससे बात करने की सोची परंतु शायद उस समय वो बात करने के मूड में नहीं था. या यूं कहें कि उसने मेरी बात को अनसुना सा कर दिया था, मैं भी कहां हार मानने वाला था, एक पत्रकार जो था. थोड़ी दूर जाकर बैठ गया और उसकी हरकतों को देखने लगा हलचल सी हुई और एक विशालकाय व्हेल ने हवा में गोता लगाया और तीखी आवाज में “ची. . . ची. . .” करते हुए तेजी से फिर समुद्र के पानी में खो गई. इस दृश्य को मैंने पहली बार देखा था. बड़ा रोमांचित हो गया और थोड़ा डर सा भी गया था. इतनी पास से एक बड़े व्हेल को देखना आश्चर्य था. तभी मेरा ध्यान उस व्यक्ति की ओर गया. जो एकदम सामान्य था और किनारे से दूर जा रहा था, शायद वापस.

मैं तेजी से दौड़कर उसके पास गया, “ब्रो. . . प्लीज. . . वेट. . . वेट मैं आपसे बात करना चाहता हूं. “ उसने मेरी ओर देखा और मुस्कुराया, वो ठहर गया. “अच्छा पूछिए. “ मैंने उससे पूछा “आपने देखा समुद्र में वो सबसे बड़ी व्हेल को” मेरी सांसे चढ़ी हुई थी. मेरी हालत देख कर वो बोला आप कहां से आये हैं. मैंने बताया कि “मैं मुंबई, भारत से आया हूँ”. “अच्छा, घूमने आए हैं मेरे देश में” मैंने हां में सिर हिलाया. “भारत से हैं. मेरा भी पसंदीदा देश है वो. आपसे मिल कर अच्छा लगा, पर आपने बताया नहीं कि आप मुझसे क्या पूछना चाहते हैं” मैंने अपनी सांसों को काबू में किया और हिम्मत करके पूछा, “. . ब्रो. . आप आज समुद्र के किनारे क्या कर रहे थे. बड़ी अजीब-अजीब सी आवाजें भी कर रहे थे. “ वो मेरी ओर देखकर मुस्कुराया, उसकी आखों में बड़ा तेज था.

“मैं गैरी हूं. यह मेरा कार्ड है. आप शाम को आ जाना यहीं किनारे पर. पास में ही मेरा घर है, वहीं बैठकर बात करेंगे.''

एक अजनबी द्वारा ऐसा आमंत्रण पाकर मुझे आश्चर्य ही हुआ परंतु अपनी जिज्ञासा को शांत करने का कोई और साधन नहीं था. “हां जरूर” उससे विदा लेकर मैं चल दिया. आज घूमने से ज्यादा मेरे मन में उस व्यक्ति से मिलने की इच्छा बलवती हो रही थी. लिहाजा मुझे आज घूमने में आनंद नहीं आ रहा था. बस शाम का इंतजार कर रहा था.

“समुद्र के किनारे जो कुछ करते लोग मुझे देखते हैं, पागल समझते हैं. पर मैं जानता हूं. आज तुमने भी मुझे वही समझा. मैं तुम्हें बताता हूँ. ”

आज मुझे पहली बार ऐसा लग रहा था कि शाम कितनी देरी से होती है. मैं उसके घर पहुंच गया, उसका घर एक मध्यम परिवार का था. घर पर उसके परिवार के अन्य सदस्य भी थे. मुख्य द्वार पर ही वो व्यक्ति गैरी खड़ा था. शायद मेरा ही इंतजार कर रहा था. एक छोटे से कमरे में हम चले गए. उसने अलमारी से एक एलबम निकाली और मेरे हाथ में थमा दी. “यह क्या है? मैंने पूछा, उसने कहा “देखो और जान जाओगे” मैं एलबम देखने लगा, वो मुझे उसमें दिख रहे लोगों का परिचय कराता गया. एलबम काफी बड़ा था. मेरा मन बिलकुल नहीं लग रहा था, उसे देखने में. परंतु मैं मेहमान के रूप में गया था. इसलिए उसका दिल नहीं तोड़ना चाहता था. शायद एलबम न देखने से उसे गुस्सा भी आ जाए, यही सोचते हुए मैं एलबम के पेज आगे बढ़ाता गया. वो एलबम तो गैरी की पूरी कहानी कह रही थी. बचपन से लेकर शायद आज तक की फोटो होंगी. एक फोटो की ओर इशारा कर बोला “वो देखो मेरी मां, उसकी गोद में मैं हूं, जानते हो पीछे कौन सा शहर है गुवाहाटी शहर. “ मेरी मां हिन्दुस्तानी थी. वहीं की थी.

"तभी अचानक मैं एक पेज पर रुक गया. वही समुद्र का किनारा, कुछ लोग खड़े हैं और वहां कुछ तो हो रहा था. एलबम का वो पेज काफी पुराना भी था इसलिए शायद फोटो कुछ धुंधली भी हो गई थी. "यह क्या है. यहां क्या हो रहा है?" मैंने गैरी से पूछा. गैरी मुस्कुराया, एलबम को उसने अपनी ओर कर लिया. "यह स्वीटी है. मेरी स्वीटी"

मैंने चौंक कर उससे पूछा "गैरी क्या कहा तुमने?" "हां मित्र, समुद्र के किनारे जो कुछ करते लोग मुझे देखते हैं, पागल समझते हैं. पर मैं जानता हूं. आज तुमने भी मुझे वही समझा. मैं तुम्हें बताता हूँ. "

"आज से करीब 30 वर्ष पहले की बात है. मैं अपने पिता के साथ समुद्र के किनारे घूमने गया था. वहां सभी घूमने आते थे. तभी किनारे पर मैंने देखा कि काफी भीड़ है. मैंने अपने पिताजी को कहा कि वो मुझे वहां ले चलें. थोड़ा ना-नुकर के बाद मेरी जिद करने पर वो मान गये. हम वहां पहुंचे तो क्या देखते हैं. एक व्हेल किनारे पर पड़ी तड़प रही है. मैंने पिताजी से पूछा कि यह ऐसा क्यों कर रही है, उन्होंने मुझे बताया कि यह व्हेल का बच्चा है. समुद्र की लहरों ने उसे बाहर फेंक दिया है. पानी नहीं मिलने के कारण वो तड़प रही है" मैं उस समय करीब 10-11 वर्ष का था. मुझसे यह सब देखा नहीं जा रहा था. "पापा कुछ करो न उसे बचा लो. " पापा भी क्या करते, वो कोई छोटी मछली तो थी नहीं, बड़ी सी और भारी सी थी. भीड़ बढ़ गई थी. मैंने पापा का हाथ छुड़ाया और घर की ओर भागा.

पापा पूछते रहे. थोड़ा मेरे पीछे दौड़े भी. मैंने चिल्ला कर कहा. "अभी आता हूं. घर से बाल्टी लेने जा रहा हूं. "

मैं घर से बाल्टी लेकर दौड़ा-दौड़ा वापस आ गया और सीधे समुद्र से पानी भरा, बाल्टी भारी हो गई, उठाई नहीं जा रही थी फिर भी थोड़ा पानी उसमें बचा कर मछली की ओर दौड़ा, पापा भी मेरे पीछे-पीछे दौड़े. मैंने पानी सीधे मछली के मुंह में डाल दिया. फिर भागा समुद्र की ओर, पानी लाया मछली के मुंह में डाल दिया. मैं तो मछली को बचाने की कोशिश में था परंतु मेरी हिम्मत को देखकर वहां खड़े लोगों को भी होश आया और वो भी ऐसा करने लगे. देखते-देखते सारा हुजूम यही करने लगा. मैंने मछली को देखा. वो अपना मुंह कभी बंद करती, कभी खोलती, उसकी आंखों को देखकर ऐसा लग रहा था कि वो कह रही हो मुझे बचा लो. मुझे बचा लो. तभी वहां समुद्री रक्षकों की टीम भी आ गया. शायद किसी ने इसकी खबर कर दी थी कि एक किनारे पर आ गई और वह अभी जिंदा है. मेरा काम यथावत जारी था. मैं बिना कुछ सोचे, बिना रूके अपना काम करता रहा. मुझे तो बचपन में मां ने लोरी सुनाई थी कि मछली जल की रानी है, जीवन उसका पानी है. बाहर निकालोगे तो मर जाएगी. पानी में डालो तो जी जाएगी", वही कविता मेरे मन मस्तिष्क में छा गई थी. मैं थक

चुका था. अचानक मुझे ऐसा लगा मछली मुझे देख रही हैं. मुझसे दया करने को कह रही है. मैं फिर उठा और फिर से समुद्र से पानी लेकर उसके मुंह में डालने लगा.

इसी बीच समुद्री रक्षक टीम ने सभी को पीछे कर दिया और व्हेल को रस्सियों से बांधने का काम शुरू कर दिया. मैं पानी लेकर पहुंचा, पर मुझे उसके पास जाने नहीं दिया गया. मैं रोने लगा, तभी एक रक्षक मुझे मछली के पास ले गया और कहा जाओ डाल दो पानी. मैं गया और अपनी आखिरी बाल्टी के पानी को मछली के मुंह में डाल दिया. मैंने अपने नन्हे हाथों से उसके चेहरे को भी थोड़ा सहलाया. तभी समुद्री रक्षक ने मुझे वहां से हटा दिया. मैं रोने लगा, देखता भी रहा कि वो लोग क्या कर रहे हैं. काफी मेहनत के बाद उस मछली को हवा में उठा लिया गया और धीरे धीरे समुद्र की ओर ले जा कर छोड़ दिया गया. थोड़ी देर तक सब जगह शांति छा गई. मछली सीधे समुद्र के अंदर चली गई. एक मायूसी छा गई "मर गई शायद, मर गई" लोग यह बोलते हुए जाने लगे. मैं उदास हो गया. मेरा मन नहीं मान रहा था, लोग चले गये. मैं रुका रहा. पापा भी. करीब आधे घंटे के बाद अचानक समुद्र में जोरों की आवाज हुई. "ची. . . ची. . . " "अरे, यह क्या वहीं मछली तेजी से समुद्र में उछल रही थी. मैं उछलने लगा और मेरी आखों में से आंसू निकल पड़े. मैं तालियां बजाने लगा और समुद्र की ओर भाग गया. पापा की आवाज तो मैंने सुनी नहीं. समुद्र के बहुत अंदर चला गया, बस. . एक बार छू लें. तभी वो मछली धीरे से आई और मुझे छूते हुए चुपके से समुद्र में दूर चली गई. गहरे समुद्र में. फिर उस दिन वो नहीं आई.

मैं अक्सर यहां आता रहा उससे मिलने, पर वो हर बार तो नहीं मिली. पर कभी कभार किस्मत में मिलना रहता था. इसी उम्मीद में यहां आता हूं. पर अब शायद वो मुझे भूल गई. पर मैं नहीं भूला था, मैंने तो उसका नाम भी स्वीटी रख दिया था. मुझे उससे मिलने का बहुत इंतजार था इसी के कारण मैंने समुद्र में गोताखोरी भी सीखी. तैरना सीखा और समय के साथ ही मुझे समुद्री रक्षक की नौकरी भी मिल गई थी."

"फिर क्या, वो कभी नहीं मिली." मैंने पूछा, वो थोड़ा खामोश हुआ और मैंने देखा, उसकी आँखों में आंसू थे जिन्हें छुपाते हुए वो बोला "एक दिन की बात है. हम गहरे समुद्र में गश्त पर थे अचानक एक लहर ने हमारी बोट को पलट दिया, सभी गहरे समुद्र में गोते लगाने लगे. यह बेल्ट ही बोट में फंस गई थी. मैं बहुत कोशिश करता रहा परंतु उसको छुड़ा नहीं पाया, मेरा बचना मुश्किल था और मैं बेहोश होने लगा था. बोट समुद्र में डूबती रही. मेरे साथी सोच रहे थे कि मैं शायद किनारे पहुंच गया होऊंगा क्योंकि मैं कहीं भी नज़र नहीं आ रहा था. नज़र आता भी कैसे, मैं तो बोट में ही फंस चुका था, बोट पानी में डूबने लगी

थी. मुझे नहीं पता उसके आगे क्या हुआ होगा, मैं बेहोश हो चुका था.

दूर मेरे पिताजी भी परेशान कि सारे प्रहरी तो आ गये किनारे पर परंतु मैं नहीं आया. उनका मन डोलने लगा था. मन में उल्टे सीधे प्रश्न भी उठ रहे थे. तभी उन्हें किसी ने खबर दी कि समुद्र के एक किनारे पर एक आदमी पड़ा है, समुद्री सुरक्षा की वर्दी पहने हुए, वो तुरंत अपने साथियों के साथ यहां पहुंचे, भीड़ लगी हुई थी. मुझे होश आ चुका था पर समझ नहीं पाया कि आखिर यह कैसे हुआ. मैं समुद्र के किनारे पड़ा सांसे ले रहा था. पिताजी आये और मुझे गले से लगाया. पूछने लगे "यह सब कैसे हुआ? तुम यहां कैसे पहुंच गये. हम तो बस. . . "और वो रो पड़े".

तभी समुद्र से जोर जोर से "ची. . . ची. . . ची" की आवाज ने सभी को चौंका दिया. "पापा. . . यह तो स्वीटी है" मैं चिल्लाया. . . "हां बेटा-हां यह तो वही व्हेल है" पापा भी खुशी से भर्राते हुए बोले, मैं तेजी से उठा और समुद्र की ओर भागा. आज पापा ने मुझे रोकने की जरूरत नहीं समझी, मुझे देखते रहे. मैं समुद्र के बहुत अंदर तक चला गया. समुद्र के इतने अंदर कि मैं स्वीटी को छू सकूं. स्वीटी वहां नहीं थी, मैं इधर-उधर देखता रहा तभी अचानक दूर. . . स्वीटी "ची. . . ची. . ." करती समुद्र में उछलती दूर निकल गई, जैसे उसने मुझे पहचान लिया हो. मुझे बाय कर रही हो.

पिताजी को वही पुरानी बातें याद आने लगीं. कुछ पुराने लोग भी वहां थे, उन्हें भी उस बच्चे की याद आई. उन्हें पिताजी ने बताया, "वो कोई और नहीं मेरा ही बच्चा था और वो कोई और नहीं वही व्हेल मछली है, जिसने आज अपना कर्ज चुकाया है, मुझे मेरा बच्चा लौटा कर."

मैं किनारे पर वापस आ गया था. देखा, पापा की आखों में आंसू थे. खुशी के, गर्व के, स्वीटी के प्रति आभार के, प्यार के!

मैं सारी एलबम देख चुका था. गैरी भावुक हो चुका था. बोला "मित्र. . . जानते हो. जिस जगह पर मैं समुद्र के बाहर मिला था. वो जगह कौन सी थी? (मैं गैरी की ओर देखने लगा). यह वही जगह थी जहां स्वीटी तड़प रही थी और मैं उसे जिन्दा रखने की कोशिश कर रहा था. " गैरी की आखें नम थी. शायद स्वीटी की याद में.

मैं उठा और मैंने गैरी के कंधों को थपथपाया और उसकी ओर प्यार से देखा और मुस्कुराकर उससे बोला. "अरे भाई, उसका भी तो परिवार होगा. उसे अब समय नहीं मिलता होगा. . . तुमसे मिलने का", गैरी मुस्कुराया, मैं बाहर चल दिया, "पगला कहीं का !" मैं भी मुस्कुराते हुए बुदबुदाया. मैंने अपने मन में ही गैरी से वादा लिया "गैरी. . . अब यह सच्चाई दुनिया के सामने होगी, तुम्हें कोई पागल नहीं समझेगा, तुम बहुत दयालु हो. हमें तुम पर गर्व है. . .

प्रदीप सिंह

■■■

औरत ही गढ़ती है...

एक गांव में एक जमींदार था. उसके कई नौकरों में जग्गू भी एक था. गांव से लगी बस्ती में, दूसरे मजदूरों के साथ जग्गू अपने पांच लड़कों के साथ रहता था. जग्गू की पत्नी बहुत पहले गुजर गई थी. एक झोपड़े में वह बच्चों को पाल रहा था. बच्चे बड़े होते गए और जमींदार के घर नौकरी में लगते गये. सब मजदूरों को शाम को मजदूरी मिलती. जग्गू और उसके लड़के चना और गुड़ खरीद लेते थे. चना भून कर गुड़ के साथ खा लेते थे.

बस्ती वालों ने जग्गू को बड़े लड़के की शादी कर देने की सलाह दी. उसकी शादी हो गई और कुछ दिन बाद गौना भी आ गया. उस दिन जग्गू की झोपड़ी के सामने बड़ी धमचक मची. बहुत लोग इकट्ठा हुये, नई बहू देखने को, फिर धीरे धीरे भीड़ छंटी, आदमी काम पर चले गये, औरतें अपने अपने घर! जाते जाते एक बुढ़िया बहू से कहती गई "पास ही घर है किसी चीज की जरूरत हो तो संकोच मत करना, आ जाना लेने."

सबके जाने के बाद बहू ने घूंघट उठा कर अपनी ससुराल को देखा तो उसका कलेजा मुंह को आ गया. जर्जर सी झोपड़ी, खुटी पर टंगी कुछ पोटलियां और झोपड़ी के बाहर बने छः चूल्हे (जग्गू और उसके सभी बच्चे अलग अलग चना भूनते थे). बहू का मन हुआ कि उठे और सरपट अपने गांव भाग चले, पर अचानक उसे सोच कर धक्का लगा-वहां कौन से नूर गड़े

हैं. मां है नहीं, भाई भौजाई के राज में नौकरानी जैसी जिंदगी ही तो गुजारनी होगी. यह सोचते हुए वह भुक्का फाड़ रोने लगी. रोते-रोते थक कर शान्त हुई. मन में कुछ सोचा, पड़ोसन के घर जा कर पूछा "अम्मां, एक झाड़ू मिलेगा? बुढ़िया अम्मा ने झाड़, गोबर और मिट्टी दी और साथ में अपनी पोती को भेज दिया. वापस आ कर बहू ने एक चूल्हा छोड़ बाकी फोड़ दिये. सफाई कर गोबर-मिट्टी से झोपड़ी और दुआर लीपा. फिर उसने सभी पोटलियों के चने एक साथ किये और अम्मा के घर जा कर चना पीसा. अम्मा ने उसे साग और चटनी भी दी. वापस आ कर बहू ने चने के आटे की रोटियां बनाई और इन्तजार करने लगी.

जग्गू और उसके लड़के जब घर लौटे तो एक ही चूल्हा देख कर भड़क गए. चिल्लाने लगे कि इसने तो आते ही सत्यानाश कर दिया. अपने आदमी का छोड़ बाकी सबका चूल्हा फोड़ दिया. झगड़े की आवाज सुन बहू झोपड़ी से बाहर निकली, बोली "आप लोग मुँह हाथ धो कर बैठिए, मैं खाना परोसती हूँ." सब अचकचा गए. बहू ने पत्तल पर खाना परोसा रोटी, साग, चटनी मुद्दत बाद उन्हें ऐसा खाना मिला. खाकर अपनी अपनी कथरी ले, वे सोने चले गए.

सुबह काम पर जाते समय बहू ने उन्हें एक एक रोटी और गुड़ दिया चलते समय जग्गू से उसने पूछा "बाबूजी, मालिक आप लोगों को चना और गुड़ ही देता है क्या?" जग्गू ने बताया कि मिलते तो सभी अन्न हैं, पर यह चना-गुड़ ही लेते हैं. आसान रहता है खाने में. बहू ने समझाया कि सब अलग अलग प्रकार का अनाज लिया करें, एक देवर ने बताया कि उसका काम लकड़ी चीरना है. बहू ने उसे घर के ईधन के लिए भी कुछ लकड़ी लाने को कहा वह सब की मजदूरी के अनाज से एक- एक मुद्री अन्न अलग रखती और उससे बनिये की दुकान से बाकी जरूरत की चीजे लाती, जग्गू की गृहस्थी धड़ल्ले से चल पड़ी. एक दिन सभी भाइयों और बाप ने तालाब की मिट्टी से झोपडी के आगे बाड़ बनाया. बहू के गुण गांव में चर्चित होने लगे.

जमींदार तक यह बात पहुंची. यह कभी कभी बस्ती में आया करता था. आज वह जग्गू के घर उसकी बहू को आशीर्वाद देने आया. बहू ने पैर छूकर प्रणाम किया तो जमींदार ने उसे एक हार दिया. हार माथे से लगाकर बहु ने कहा कि मालिक यह हमारे किस काम आयेगा? इससे अच्छा होता कि मालिक हमें चार लाठी जमीन दिये होते तो झोपड़ी के दायें बायें एक कोठरी बन जाती. बहु की चतुराई पर जमींदार हंस पड़ा. बोला, "ठीक है, जमीन तो जग्गू को मिलेगी ही लेकिन यह हार तो तुम्हारा हुआ"

ऐसी ही कहानी मेरी नानी मुझे सुनाती थीं, फिर हमें सीख देती थीं औरत चाहे तो घर को स्वर्ग बना दे और चाहे नर्क. मुझे लगता है कि जग्गू की बहू जैसी औरतें ही देश, समाज, व्यक्ति या परिवार को गढ़ती है.

प्रीति साव

■■■

कोरोना काल के अनुभव: खट्टे- मीठे

15 मार्च, 2020 से आरम्भ हुआ मेरे जीवन में कोरोना काल. एडवांस्ड स्टेज प्रेगनेन्सी के साथ कोरोना का भय और स्थान हमारा नं. 1 इंदौर. इंदौर में उस समय कोरोना स्वच्छता की तरह ही चौके छके लगा रहा था. उस समय इंदौर में भारत का सबसे सख्त कर्फ्यू था. जरूरी चीजें यहाँ तक कि सब्जियां भी नहीं मिल रहीं थी. सिर में बाल जितने रिश्तेदार होने के बावजूद कोई भी न आ सका, काम वाली बाइयां भी बंद करनी पड़ी. एक बात सबसे अधिक सता रही थी कि कोई घर से आ न सका तो नवजात बच्चे को संभालेंगे कैसे? मगर जिसका डर था वही हुआ, डिलीवरी थोड़ा जल्दी करवानी पड़ी. कोई आ न सका. आमतौर पर मुझे रोना नहीं आता है परंतु उस दिन न जाने क्यों आँसू नहीं रुक रहे थे. पूरे ऑपरेशन के दौरान भी मैं रो रही थी.

खैर मेरे घर एक नन्ही परी ने जन्म लिया, पति दिन भर साथ रहने के बाद घर चले गये, क्योंकि बड़ी बेटी को सहेली के घर छोड़ा था. फिर सीधे वे हॉस्पिटल से छुट्टी वाले दिन आये. उस बीच मेरी बड़ी बेटी की केयर टेकर जैसे तैसे आ गई थी. इन चार दिनों में डॉक्टर, वैक्सीन, दवाइयां, केयर टेकर का भोजन सब मैंने मैंनेज किया. चार दिनों बाद छुट्टी हुई. सास द्वारा किये जाने वाले सब नेगचार केयर टेकर ने किये, 22-23 दिन बाद फिर हम ही पास की सहायता से मेरे मायके के लिये रवाना हुए. उस समय बैतूल ग्रीन जोन में था, सोच रही थी कि जाएंगे तो मम्मी

गले लगा लेगी, कोई मेरी बेटी को ले लेगा, बड़ी बेटी को इतने दिन बाद बच्चों के साथ खेलने को मिलेगा, पर हुआ उल्टा. हमारे स्वागत के लिये 100 से ज्यादा लोग खड़े थे, परंतु 100 मीटर की दूरी पर, हम इंदौर से क्या आये थे हमें देखने के लिए ऐसे आ रहे थे जैसे कोई इनामी बदमाश पकड़े गए हों. सबने दूर से राम-राम की और हमें घर के ऊपर वाले फ्लोर पर क्वारंटाइन किया गया. हम समझ सकते थे, परंतु दुःख हो रहा था. लेकिन आगे का एपिसोड और खतरनाक था. अगले ही सुबह एक बड़े शोर की आवाज आई, छत से देखा तो पता चला गाँव के सरपंच, सचिव और दो चार लोग हमें गाँव के सरकारी स्कूल में क्वारंटाइन करवाने आये हैं. मेरी मम्मी जोर-जोर से रो रही थीं कि मेरी तुरंत डिलीवरी वाली बेटी सरकारी स्कूल में कैसे रहेगी. वह उस जगह जायेगी तो मरी ही

छत से देखा तो पता चला गाँव के सरपंच, सचिव और दो चार लोग हमें गाँव के सरकारी स्कूल में क्वारंटाइन करवाने आये हैं.

वापस आयेगी, मैं कैसे भेजू, गाँव के जिन घरों के 10-15 लोगों को स्कूल में क्वारंटाइन किया गया था, यह पुरजोर विरोध कर रहे थे कि या तो यह लोग भी स्कूल में रहे या हमारे लोग घरों में वापस आयें. मेरे घर के बाहर मेला सा लग गया था. हम छत से सब देख रहे थे और स्कूल में रहने के लिये मानसिक रूप से तैयार हो रहे थे. करीब 2 घण्टे की बहस के बाद आखिरकार परिणाम आया कि, अब पूरे घर को ही क्वारंटाइन कर दो. फिर घर के बाहर पर्चे लगाए गए कि सावधान! इस घर में इंदौर से कुछ लोग आये हैं. गाँव में ढोल बजाकर मुनादी हुई कि इस घर के लोगों से 14 दिन दूर रहें क्योंकि यहां इंदौर से लोग आये हैं और 14 दिनों तक हमें अछूतों की तरह खाना-पानी मिलता रहा और हमारा क्वारंटाइन पूरा हुआ, उसके बाद अब सब कुछ अच्छा, बहुत अच्छा है.

बबली सिंह

■■■

यादों में बचपन- स्वप्न

रात का अंधेरा हो चला था और घड़ी की सुइयां नौ बजाने को बेकरार थी. मैंने अपना कम्प्यूटर बंद किया और बुझे मन से ऑफिस से निकल पार्किंग की ओर चल पड़ा. तबियत खराब होने के कारण कल मुझे छुट्टी लेनी पड़ी थी तो सुबह बॉस की डाँट पड़ी. दिन भर पूरी मेहनत से काम करने के बाद शाम होते-होते मूड भी खराब होता गया. भूख भी जोरों से लगी थी तो कार की स्टियरिंग जल्दी से घुमाया और घर की तरफ चल पड़ा, शहर की चकाचौंध, शोर शराबा, तेज प्रकाश और अव्यवस्थित जीवन मुझे मेरे गाँव की याद दिला रहे थे. सड़क पर जाम लगा था तो घर पहुँचते-पहुँचते सवा दस हो गए. भूख के मारे पेट में चूहे खलबली मचाए हुए थे. किचन में खाली बर्तन देखे तो याद आया कि सुबह खाना बनाने वाली आंटी ने भी आज की छुट्टी मांगी थी. किसी तरह ब्रेड और मैगी खा कर पेट की भूख शांत की और बेड पर आकर लेट गया. थकान ज्यादा होने के कारण कपड़े बदलने की भी हिम्मत नहीं हो रही थी.

घर की बहुत बाद आ रही थी. आँखें बंद हुई तो सामने बस माँ का चेहरा था. सातवीं कक्षा में गणित की परीक्षा में 45% अंक मिले थे तो पिताजी ने छड़ी से मारा था, बहुत रोया, माँ भी गुस्सा हुई. उस समय दिल में बस यही आ रहा था, कि भगवान मुझे जल्दी से बड़ा

बना दे. पढ़ाई लिखाई के झंझट से जल्द मुक्ति मिल जाए तो अच्छा रहेगा, और बड़े होने का सबसे बड़ा फायदा कि माता पिता की मार नहीं खानी पड़ेगी, बचपन में अक्सर ऐसा होता था जब खेल के मैदान में कोई उम्र में बड़ा बालक अच्छा खेल रहा हो या किसी बात पर किसी से लड़ाई हुई तो मन अक्सर ही ऐसी कामना करता है कि मैं जल्दी से बड़ा हो जाऊं तो दुनिया के सब ऐशोआराम मेरी मुट्ठी में होंगे. अनायास ही ऐसी कामना मेरी ही तरह लगभग हर बालक ने की होगी. मुझे याद आ रहा था, पिताजी से मार खाने के बावजूद, माँ ने अपने हाथों से खाना खिलाया, और अपनी गोद में सर रख कर सुलाया, परिस्थितियाँ आज भी सातवीं कक्षा जैसी ही थीं, बस बड़े होने की दौड़ में माँ की गोद, पिता का आशीर्वाद और बचपन की मस्ती कहीं छूमंतर हो चुकी थी. मस्ती करते हुए उस बचपन में बड़े होने की चाह, क्या पता था कि ऐसा दिन दिखाएगी. बचपन में माँ मेरी पसंद का खाना बनाया करती थी, फिर भी हम नखरे दिखाया करते थे. क्या पता था कि बड़े होने पर माँ के बने उसी खाने को तरस जाएंगे. ब्रेड, मैगी और न जाने ऐसे कितने भोजन मुझे बहुत पसंद थे, पर यह पसंदीदा भोजन अब पेट की भूख शांत करने के काम आ रहे हैं. अब बस माँ के हाथों का बना वही खाना याद आता है जिसे हम नाक भौं सिकोड़ कर खाया करते थे. पिताजी के

"बचपन में माँ मेरी पसंद का खाना बनाया करती थी, फिर भी हम नखरे दिखाया करते थे. क्या पता था कि बड़े होने पर माँ के बने उसी खाने को तरस जाएंगे."

पास पुराना स्कूटर था, तो कार में घूमने का शौक था. बचपन में मिट्टी से बनाए कार के खिलौनों से खेलने का जो मजा था वो आज असली कार में भी नहीं है. लगता है बस जिंदगी भगाये जा रही है.

"विभोर, आज स्कूल नहीं जाना है क्या", माँ की आवाज़ से नींद खुली तो भौचक रह गया. शीशे के सामने जाकर देखा तो विश्वास नहीं हुआ, देखा लगभग 10 साल का विभोर खड़ा मुस्कुरा रहा है. माँ ने फिर आवाज़ लगायी, "जल्दी नहा के आ जा, नाश्ता ठंडा रहा है." मैं जल्दी-जल्दी नहा कर स्कूल ड्रेस पहन कर रसोई में चला गया. "माँ क्या बनाया है", माँ ने ताजे मक्खन के साथ चूल्हे पर बनी रोटी सामने रख दी, बचपन में लगभग रोज़ वही नाश्ता मिलता था तो माँ से गुस्सा हो जाता था, पर आज माखन के साथ रोटी, दुनिया के सभी पकवानों से ज्यादा स्वादिष्ट लग रही थी. नाश्ता करते करते देर हो गयी तो पिताजी ने स्कूटर से स्कूल छोड़ दिया. स्कूटर की सवारी करते हुए ठंडी शीतल हवा किसी हवाई यात्रा से भी ज्यादा

खुशगवार थी. कक्षा में पहुंचा तो सहपाठी हल्ला मचा रहे थे. पांडे सर आए तो ज़ोरों से डांटने लगे और पूरी कक्षा को मैदान में मुर्गा बना दिया, पांडे सर की डांट में भी अपनापन था. पूरी कक्षा के साथ मुर्गा बनना जैसे कोई नये खेल का अनुभव करा रहा था. कक्षा के टूटे फर्नीचर से बने बैट से खेलना दिल खुश कर दे रहा था. "अक्कड़ बकड़ बम्बे वो अस्सी नब्बे पूरे सौ," कानों को नई स्फूर्ति दे रहे थे. तोता उड़, मैना उड़. . . और फिर भैंस उड़ा देने पर दोस्तों से मार खाने में जो आनंद था वो उस बड़प्पन की नीरस सी जिंदगी में कहाँ था. कटी पतंग लूटने के लिए बड़ा सा झाड़ लेकर पतंग के पीछे भागना, खरीदी हुई पतंग उड़ाने से ज्यादा उमंग दे रही थी. मिट्टी के खिलौने, माँ- पिताजी की डांट, दादी की कहानी, भैंस के ऊपर बैठकर खेतों में जाना, पिताजी का खेलने के लिए डांटने के बावजूद समय से पहले ही मैदान में पहुंच जाना, गिल्ली डंडा और क्रिकेट खेलना, माँ का अपने हाथों से खाना खिलाना और फिर अपने आँचल से मुंह पोंछना, सर पर हाथ फेरना और दुनिया भर के आशीर्वाद देना और माँ के आशीर्वाद को सुने बिना ही भाग जाना. बारिश हुई तो नाव बना कर पानी में चलाना और चींटी पकड़ कर उसमें बैठा देना. टिड्ढे को पकड़कर उसकी पूंछ में धागा बांधकर उड़ाना. फिर से बचपन में जाकर जैसे दुनिया की सारी खुशियाँ मुझे मिल गयी थीं.

घंटी की आवाज़ सुन कर नींद खुली, दरवाजा खोला तो देखा माँ पिताजी सामने खड़े मुस्कुरा रहे थे. चरण स्पर्श किए तो माँ-पिताजी का हाथ सर पर महसूस कर मन आह्लादित हो गया.

"माँ आने से पहले बता देती तो मैं स्टेशन लेने आ जाता".

"विभोर तेरी तबीयत ठीक नहीं थी, इसलिए तुझे नहीं बताया. तुझे रसमलाई बहुत पसंद है न तेरे लिए लायी हूँ. जल्दी ब्रश करके आ जा".

"माँ मैं अब बड़ा हो गया हूँ, वो सब मुझे बचपन में पसंद था". "तू कितना भी बड़ा हो जा बेटा, मेरे लिए तू हमेशा मेरा प्यारा बेटा ही रहेगा" कहकर माँ ने सर पर हाथ रख कर बहुत सा आशीर्वाद दिया. ऐसा लगा जैसे मेरा सपना सच हो गया हो और मैं सच में 10 साल का विभोर फिर से माँ के आँचल में शैतानियाँ करने को तैयार हूँ. रसमलाई खाते हुए मुझे वो कविता याद आ रही थी.

यह दौलत भी ले लो,
यह शोहरत भी ले लो
भले छीन लो मुझसे मेरी जवानी
मगर मुझको लौटो दो बचपन का सावन,
वो कागज की कश्ती वो बारिश का पानी.

अभिषेक राज

■■■

माँ नहीं आयेगी

पंकज अपनी माँ से उतना ही प्यार करता था, जितना हम सभी लोग अपनी माँ से करते हैं. अनुराधा एक विधवा थी जिसने अपने बेटे पंकज का लालन-पालन बहुत मुश्किल से किया था. जब भी वो अपने बेटे की सफलता की कोई भी छोटी या बड़ी कहानी सुनती थी उसे बहुत खुशी मिलती थी. उसका सिर गर्व से ऊंचा हो जाता था. वो फूले नहीं समाती थी. अनुराधा के लिये उसका बेटा ही उसका संसार था. उसने अपने बेटे को सारे संस्कारों से सुसज्जित किया था ताकि वह जीवन में काफी ऊंचाइयों को छू सके.

समय के साथ पंकज को एक अच्छी पगार वाली बड़ी नौकरी मिली और अनुराधा को भी लगा कि उसके दुःख भरे दिनों का अंत होने वाला है. अनुराधा ने भी अपने काम से अवकाश ले लिया. अब वह अपने बेटे की सेवा से मिलने वाले सुख का आनंद उठाने लगी थी. उसकी दिनचर्या बहुत व्यस्त थी. उसकी सारी दिनचर्या बेटे के आस पास घूमती रहती थी. पंकज के उठने से लेकर रात को सोने तक वो उसकी तीमारदारी में ही लगी रहती थी. उसकी हर पसंद न पसंद का ध्यान रखती थी.

पंकज को भी बहुत अच्छी नौकरी मिल गई थी. . . पगार भी बहुत ज्यादा थी. अब उसके पास सुविधा की सारी वस्तुएं मौजूद थीं. बाजार में उपलब्ध सभी अत्याधुनिक तकनीकी उपकरण थे. उसके दिन की शुरुआत ही लोगों को मोबाइल मैसेज, गाने सुनने, टीवी देखने, नेट चलाने और ऑफिस जाने की भाग-दौड़ के साथ होती थी और इन्हीं सब कामों जैसे टीवी देखना, नेट चलाना, मोबाइल आदि के साथ ही समाप्त होती थी.

पर चीजें हमेशा एक जैसी नहीं रहतीं. एक दिन अनुराधा को जोर से सीने में दर्द उठा, उसने सोचा की मामूली दर्द है और सामान्य दवाईयां ले लीं. अनुराधा पूरे दिन सोती रही और उसकी हिम्मत ही नहीं हुई रसोई में जा कर कुछ बनाने की. जब शाम को पंकज ऑफिस से घर वापिस आया तो अनुराधा ने कहा, “बेटे माफ करना आज मैंने रात के खाने में कुछ नहीं बनाया, मैं तुम्हारे लिये अभी कुछ पराठे बना देती हूँ.”

पंकज हमेशा की तरह ही अपने मोबाइल में व्यस्त था और अनमने तरीके से बोला, "ठीक है, जो भी बनाओ मैं खा लूंगा". मोबाइल में व्यस्त रहते हुए ही उसने पराठे खाये, अनुराधा ने उसके खाना खत्म होने तक इंतजार किया ताकि वह उसे अपने सीने के दर्द के बारे में बता सके.

खाना खाने के बाद पंकज कम्प्यूटर पर जा कर बैठ गया. अनुराधा भी उसके पास अपनी कहानी सुनाने बैठ गई कि कैसे पूरे दिन उसने सीने के दर्द से परेशान रही. पंकज यह दर्शाता रहा कि वह उसकी बात सुन रहा है और अपना सिर भी हिलाता जा रहा था और उसने हँसते हुए माँ से कहा कि जाओ और जा कर सो जाओ. अनुराधा को बड़ा सुकून मिला यह जानकर कि उसका बेटा उसके दर्द को समझ गया है और वह उसका ध्यान रखेगा. यही सोच कर कुछ राहत के साथ वह सो गई.

अगले दिन अनुराधा ने किसी तरह हिम्मत करके नाश्ता बनाया और उसका दोपहर का भोजन पैक किया और उसको ऑफिस भेजा. बाय-बाय कहकर पंकज अपने काम के लिये कानों में स्पीकर फोन लगाकर गाने सुनते हुए ऑफिस को चला गया.

दोपहर तक जब अनुराधा को लगा कि अब सीने का दर्द असहनीय हो रहा है तो उसने अपने बेटे से मोबाइल पर बात करने के लिये उसके मोबाइल पर कॉल करने की कोशिश की पर उसने फोन काट दिया और मैसेज दिया कि अभी व्यस्त हूं बाद में कॉल करूंगा. किसी तरह अनुराधा ने एक ऑटो किया और पास के अस्पताल में पहुंची. जैसे ही डॉक्टर ने अनुराधा का परीक्षण किया तुरंत ही उन्होंने उसको स्ट्रेचर पर लिटा कर आईसीयू में भर्ती कर दिया. "आंटी आप अकेली आई हैं क्या?" "हम किससे सम्पर्क करें," नर्स ने पूछा.

अनुराधा की बैचेनी बढ़ती जा रही थी. उनको लगा जैसे उनके साथ कुछ गलत हो रहा है. कुछ तो बात है. . जरूर कोई बड़ी बात है. . . . बड़ी मुश्किल के साथ उसने अपने बैग से मोबाइल निकाला और पंकज का नंबर नर्स को दिखाया, अनुराधा की आंखों में आंसू भर आये. आंखों में आंसू भरते हुए उसने प्रार्थना की, "हे भगवान मेरी समझ में नहीं आ रहा कि मेरे साथ क्या गलत हो रहा है. मुझे बहुत डर लग रहा है. कहीं जो मैं सोच रही हूँ कि सच न हो जाये. . . हे प्रभु मेरा पंकज अभी भी एक बच्चा ही है पता नहीं वो कैसे रह पायेगा मेरे बिना. वो कैसे संभालेगा अपने आपको." यह कहते हुए अनुराधा ने रोना शुरु कर दिया.

"आंटी, आप चिंता मत करिये. . आप ठीक हैं. . . आपको कुछ नहीं हुआ है. . मैं अभी आपके बेटे को फोन करके बुलाती हूँ." नर्स ने कहा.

नर्स ने पंकज के मोबाइल नंबर पर कॉल किया पर नंबर व्यस्त आ रहा था. उसने फिर से कोशिश की पर नंबर व्यस्त ही आ रहा था. नर्स ने फिर से कोशिश की और इस बार घंटी जा रही थी. उसने राहत की सांस ली. वो पंकज को यह सूचना देना चाहती थी कि उसकी माँ की हालत बहुत गंभीर है और कुछ मिनिट पहले ही उनको गंभीर हार्ट अटैक आया है. परंतु पंकज ने फोन काट दिया और मैसेज भेजा कि वो अभी व्यस्त है और वह बाद में फोन करेगा, नर्स ने तुरंत ही उसको

मैसेज भेजा कि इस मेसेज को देखते ही तुरंत आदर्श अस्पताल को संपर्क करें.

पंकज रोज की तरह ही रात में घर वापिस आया और देखा कि घर पर ताला लगा हुआ है. उसको रात के इस समय घर पर ताला देखकर बहुत आश्चर्य हुआ. उसको समझ में नहीं आ रहा था कि माँ इतनी रात को घर पर ताला लगा कर कहां चली गई. पंकज ने अपनी माँ का नंबर लगाने की बहुत कोशिश की. घंटी जा रही पर कोई उठा नहीं रहा था. . . उसकी बेचैनी बढ़ती जा रही थी. . "क्या हुआ जो माँ फोन नहीं उठा रही. . . ईश्वर करे सब कुछ ठीक हो."

वो बेचैनी से इधर से उधर टहल रहा था. . उसकी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था कि क्या करें. . . तभी उसे याद आया कि उसे दोपहर में एक मैसेज आया था. . उसने तुरंत ही मैसेज को देखा और नर्स द्वारा अस्पताल को संपर्क करने हेतु भेजे गये मैसेज को पढ़ा. "हे भगवान! मैंने इसको पहले क्यों नहीं देखा. . . अस्पताल में. . . यह सब क्या है. . हे भगवान. . ." आंसुओं के बहाव के साथ वो जल्दी से अस्पताल पहुंचा. वह रिसेप्शन पर पहुंचा और पूछा. . "अनुराधा. . . मेरी माँ. . . मुझे मैसेज मिला था. . ."

पास ही खड़े एक बड़े डॉक्टर ने मामले को समझा. . . पंकज को अंदर ले जाया गया. उसको बताया गया कि उसकी माँ अब इस दुनिया में नहीं रहीं. . आज शाम को ही उनका निधन हो गया है. . तुम्हारी माँ ने सभी से तुम्हें कॉल करने का अनुरोध किया था. . . ऐसा कहते हुए, डॉक्टर ने उसकी माँ का बैग उसके हाथों में थमा दिया.

"माँ. . . माँ. . ." पंकज फूट-फूट कर रोने लगा. वह जिंदा वापिस आने के लिए कह रहा था. उसने महसूस किया कि मरने से पहले उसकी माँ ने उसको बहुत याद किया. . .

नर्स ने उसे एक पत्र लाकर दिया, "तुम्हारी माँ ने इसे अपने अंतिम समय में लिखा था. . . वो बार-बार तुम्हें ही याद कर रही थी. . . वह तुम्हें देखने के लिए बहुत उत्सुक थी. . बड़े अफ़सोस की बात है. . ."

उसने पत्र पढ़ा, "मेरे प्रिय पंकज ! माँ तुमसे बहुत प्यार करती है, अब मैं तुम्हें छोड़कर जा रही हूँ. . . अपने बेटे को इस दुनिया में अकेला छोड़कर जाने में मुझे बहुत तकलीफ हो रही है. . . अब तुम्हें अपना ध्यान खुद रखना होगा मेरे बेटे. . . बेटा अपना अच्छे से ध्यान रखना, मेरे प्यारे बेटे. . ."

पंकज फूट-फूट कर रो पड़ा, "माँ, मुझे छोड़कर मत जाओ. माँ. . . माँ वापिस आ जाओ. . . मैं कैसे रहूंगा तुम्हारे बिना माँ. . . . प्लीज माँ वापिस आ जाओ. . . . . ."

यदि पंकज ने अपनी माँ की बात एक दिन पहले सुन ली होती तो वो उसको अस्पताल ले जाता और उसको बचा सकता था... और नहीं भी बचा पाता तो भी कम से कम इस बात का संतोष तो होता कि उसने अपनी माँ को बचाने का प्रयास किया... पंकज ने अपना मोबाइल... लैपटॉप.. म्यूजिक प्लेयर सब फेंक दिया... पर क्या इससे उसे उसकी माँ मिल जायेगी.

अभी भी समय है... इन निर्जीव चीजों से ज्यादा अपने परिवार... माँ-पिता.. रिश्तों को महत्व दें....

अमित शर्मा

■■■

सीख ज़िंदगी की !

छत पर लटकते पंखे को देख मेघना गहरी सोच में डूब गयी, "इतनी भागदौड़, इतनी कमाई, इतनी शान शौकत किस काम की अगर मैं इस सेंटर से बाहर ही न निकल पाई, क्या यह मेरा आखरी समय है? क्या इसके बाद मैं अपने परिवार वालों को कभी देख न पाऊंगी?. . . . क्या मुझे मेरे जिंदगी के आखरी पल इसी कक्ष में जहाँ सिर्फ ऑक्सीजन की मशीन, दवाईयों की वही बदबू और आजू-बाजू के कक्ष में पड़े हुए मरीज और दो-चार बार आने वाले डॉक्टरों के बीच गुजारनी होगी?. . . ." अब तक की सारी छोटी-बड़ी बातें उसके जहन में इस तरह नाच रही थीं जैसे कि सरिता के प्रवाह पर फेंके पत्थर से वलय उठकर बूंदें नाचने लगती है.

मेघना करीबन पैतालीस की उम्र वाली कॉलेज प्रोफेसर. . . घर में दस साल की बेटी अनु, बारह साल का बेटा विभोर, पति राकेश और सास ससुर. . . . बड़ा घर उसमें नौकर-चाकर, बगीचा, आंगन. . . . . पर मेघना ने कभी इसे एक नज़र से देखा ही नहीं वह तो बस अपने रुतबे और दिखावे में रहती थी. पति का अच्छा बिज़नेस था, पर दोनों न एक दूसरे को समय दे पाते, न ही बच्चों को, सास-ससुर को तो पूछना दूर ही था.

चीन के वुहान शहर से होता हुआ कोरोना का राक्षस सारे देश में फैल रहा था. जब प्रधानमंत्री जी ने आकस्मिक देशव्यापी लॉकडाउन की घोषणा की तो लगा यह क्या है. घर में बंद होने से क्या होगा पर पता न था कि यह राक्षसरूपी कोरोना सच में कितना भयावह है. दो दिन बाद चौबीस मार्च को फिर से घोषणा हुई कि कोरोना की शृंखला को तोड़ने के लिए पच्चीस मार्च से पूरे देश में इक्कीस दिन का सम्पूर्ण लॉकडाउन रहेगा. घर में अब तक मेघना का किसी से संवाद नगण्य था. इस समय उसे लग रहा था कि वह नज़रबन्द हो गयी हो. तिलमिलाती हुयी

मेघना को देख सासुमां बोली स्वास्थ्य और सुरक्षा के लिए यह जरूरी है. सासुमाँ को देखते मेघना को विचार आया "यह प्रत्येक स्थिति को जरूरी जिम्मेदारी मानते हुए तादात्म्य बना लेती हैं या ऐसी असंपृक्त हो गयी है कि स्थिति से फर्क नहीं पड़ता."

बच्चे दादी को पूछने लगे दादी यह लॉकडाउन क्या है, दादी मुस्कराते हुए बोली "लॉकडाउन मतलब ताला बंदी. हम घर में है इसलिए सुरक्षित हैं." दादी और नाती के इस रिश्ते को इतने नजदीक से मेघना कितने दिनों बाद देख रही थी. अपने काम और रुतबे को लेकर वह इतनी व्यस्त थी की उसे आजू-बाजू की छोटी-छोटी खुशियाँ दिखायी नहीं देती थी पर अब तो इक्कीस दिन बिताने थे.

सुबह से टीवी पर कोरोना-कोरोना की खबरें देख कर सब घबरा जाते थे. समय बिताने के लिए क्या करें, मेघना सोचने लगी. सुबह देर से उठी तो देखा सासु माँ ने सब के लिए चाय-नाश्ता बनाया था. घर के मंदिर में दिया लगा हुआ था जिसे देख मन एक नई कली की तरह खिल उठा. मेघना की सासु माँ हर रोज सुबह उठकर ससुरजी के लिए चाय बनाती थी और दोनों बगीचे में साथ बैठकर चाय पीते थे. भले ही घर में नौकर हो पर ससुरजी को सासुमाँ के हाथ की चाय ही अच्छी लगती थी. बगीचे में वे दोनों पौधे की गुड़ाई करते थे, पौधों को पानी डालना उनकी देखभाल करना उन्हें अच्छा लगता था और यह सब करते-करते वे अपने विचार भी एक दूसरे के साथ बाँटते थे. कितनी छोटी सी बात थी पर कितना सुकून था.

मेघना को लगता था कि वह पूरी तरह गतिहीन हो गयी है. फिर उसने सोचा थोड़ा व्यायाम कर ले ताकि रोग प्रतिरोधक शक्ति बढ़ाई जाये. टीवी और मोबाइल का अत्याधिक प्रयोग दिमाग पर असर डाल रहा था. असहायता और निराशा कनपटियों में सनसनाहट भर रही थी. भयावह खबरें बता रही थी कि दुनिया अंत की ओर जा रही है. दिल बैठा जा रहा था. स्मृति मंद पड़ रही थी. घर के सारे सदस्य अब साथ मिलकर खाना खाने लगे थे. ससुरजी बताते थे कि कितनी सावधानी से अपनी देखभाल करनी चाहिए. मुँह पर मास्क लगाना चाहिए, दूसरों से दूरी बनाकर बात करनी चाहिए, बार-बार हाथ धोने चाहिएं. सासु मां तुलसी, अदरक, काली मिर्च, हल्दी और दालचीनी मिलाकर काढ़ा बनाकर सबको याद से सोते समय देती थीं. उन्हें देख मेघना सोचने लगी, घर की जिम्मेदारी इन्होंने इतनी अच्छी तरह उठाई है इसलिए मैं आराम से काम कर पाती हूं और मैं कभी इनको धन्यवाद भी कह नहीं पायी. आज पता चला घर के बड़े बुजुर्ग का घर में होना आशीर्वाद होता है, बोझ नहीं. अरसा हुआ इनका सुख- दुःख नहीं पूछा, साथ बैठकर चाय नहीं पी. काम और उसके

अहंकार में इतनी डूबी थी कि बाकि कुछ मुझे सोचना गवारा न था. पहले जब वह मेरे साथ चाय पीती थी, बातें करती थी, मुझे लगता था व्यवधान डाल रही हैं. उन्हें उपेक्षित करने के लिए अखबार पढ़ने लगती थी, इधर-उधर कॉल करती थी. उन्हें जब यह समझ आया तो उन्होंने साथ बैठना छोड़ दिया.

शाम को वह बगीचे में आयी तो बच्चे दादाजी के साथ खेल रहे थे. उसने बच्चों से पूछा "क्या मैं खेलूँ तुम्हारे साथ?" बच्चे अचरज से एक-दूसरे की ओर देखने लगे, उनके लिए यह पहली बार था कि मेघना खेलने के लिए पूछ रही थी वरना वह तो सिर्फ पढ़ाई के बारे में ही पूछती थी या डाटती थी. मेघना समझ गयी उसके और बच्चों के बीच अब एक दीवार सी आ गयी थी. वह सोचने लगी, "मैंने क्या-क्या खो दिया है."

बगीचे की ओर देखते ही मन प्रसन्न हो रहा था. सच में प्रकृति हमें कितना कुछ देती है पर हम ही उसे नज़र अंदाज करते रहते हैं. बगीचे की साफ हवा ने दिल की उदासीनता को ऐसे दूर किया जैसे पुरानी तस्वीर पर बैठे धूल को साफ करके मन में खुशी की लहर दौड़ती हो. कितनी मेहनत से ससुरजी ने इसे बनाया था. चारों तरफ उड़ रही तितलियों, काले भंवरे, मधुमक्खियों को कब से नहीं देखा था, गिरगिट, गिलहरी को दौड़ते नहीं देखा था. आज मालूम हुआ यहाँ इतने जीव बसते है. तुलसी, पुदीना, कडीपत्ता, एलोवेरा, गिलोय कितना कुछ लगा हुआ था. बगीचे की सफाई और देख-रेख के लिए ससुरजी को वाहवाही मिलनी चाहिए थी पर मैं हमेशा सोचती थी कि यह खाली बैठे रहते हैं. अपने आस-पास की वास्तविकताओं को देखने का, प्रकृति के सानिध्य में थोड़ा वक़्त बिताने का ख्याल नहीं आता था. इस लॉकडाउन ने यह सब सिखा दिया. मेघना थोड़ी देर बाद घर के अंदर आयी तो राकेश बैठे थे, मुस्कुराते हुए उन्होंने कहा "बगीचे में टहलना अच्छी बात है, धूप में भी रहा करो इम्युनिटी बढ़ानी चाहिए." मेघना सोचने लगी कल तक किसी के जहन में नहीं था यह शब्द आज सब की संपत्ति की तरह हो गया. राकेश की आवाज़ ने मेघना को विचारों के भंवर से बाहर निकाला और सिर हिला कर वह चली गयी.

कक्ष में आ रही मशीन की बीप की आवाज़ ने और बाजू के कक्ष से आ रही कुछ गड़बड़ की आवाजों ने मेघना को फिर से विचारों के आसमान से सच्चाई की जमीं पर ला खड़ा किया. नियमित जांच करने आयी परिचारिका से पूछा तो पता चला बाजू के कक्ष में भर्ती मरीज कोरोना का शिकार हो गया और उसे कोई घरवाले भी नहीं देख पाएंगे. सारी प्रक्रिया अभी अस्पताल वाले ही करेंगे. घरवालों के हाथ सिर्फ एक प्रमाण पत्र रह जायेगा. मेघना फिर से सोचने लगी आखरी बार भी घरवाले देख न पाए. हाय कैसी यह मज़बूरी.

क्या है जीवन, क्या है आखरी सच. अकेले ही आना, अकेले ही जाना बस पीछे यादें छोड़ जाना अच्छी या बुरी. . . . आप पर निर्भर करता है.

कार से अस्पताल आते देखा था तो पुलिसवाले बंद घरों के चबूतरों पर बैठकर घर से लाया खाना खा रहे थे. सोचा यह लोग न चैन से खा पाते हैं, न सो पाते है, लोगों की नौकरी जाते देखा, भूख से लोगों को तिलमिलाते हुए देखा डॉक्टरों को, पुलिस को कोरोना हो रहा है यह बेचारे उन जगह पर सेवा दे रहे हैं, जहाँ जाते हुए लोग डरते है. कुछ दिन पहले मेघना की कोरोना रिपोर्ट पॉजिटिव आयी थी.

नन्हें वाइरस ने कितना नजरिया बदल दिया है. हमारी जरूरते कम हैं इतना तामझाम पता नहीं क्यों जोड़ते हैं जो अपने हिस्से में आया है, उस पर संतोष करना चाहिए, जो दूसरों के हिस्से का है उसकी कामना क्यों? जिस स्थिति को टाला न जाये उस स्थिति का सामना सकारात्मक भाव से करना चाहिए.

मेघना विचारों के चक्रव्यूह में फिर से चली गयी, राकेश से आखिरी बार कब प्यार से बात की थी, कब उनसे प्यार से चिंता जताई थी, कब फोन करके पूछा था कि तुमने खाना खाया. कब, याद नहीं आ रहा था. तब लग रहा था भगवान मैंने थोड़े जो भी पुण्य किये होंगे तो एक बार मुझे फिर से एक मौका दे दो जीने का इस बार मैं जिंदगी खुल के जियूँ, इस बार मैं रिश्तों को पैसे से, अपने अहम् से ज्यादा अहमियत दूँ. इस बार बच्चों को कहूँ कि चलो मैं भी तुम्हारे साथ थोड़ा खेल लेती हूँ. सास-ससुरजी के साथ बैठकर उनके लिए चाय बनाकर बगीचे की हवा खाते गप्पे मारूँ, राकेश के साथ अपना सुख-दुःख बाँटू. बस एक बार. . . . .

"मेघना मैडम, अब आप ठीक है, आपकी दूसरी रिपोर्ट नेगेटिव आ गयी है. आज आपकी छुट्टी हो जाएगी." परिचारिका के इस शब्द ने मेघना को गहरी सोच से बाहर निकाला और भगवान को मन ही मन में लाख-लाख धन्यवाद करते हुए मेघना अपना सामान समेटने लगी. आज से नयी मेघना अस्पताल के बाहर निकल रही थी.

ज़िंदगी की अहमियत को लेकर, रिश्तों के अपनेपन को लेकर, आसपास की प्रकृति को लेकर और सजगता से, नयी उम्मीद से, नए नजरिये से नयी मेघना घर के रास्ते पर अपनी नज़र लगाए कार में बैठी थी. . . जैसे मानो उसने कोरोना से नहीं अपने अंदर के बुरे गुणों से लड़ाई जीती हो.

स्मिता राहुल डाबरे

■■■

सॉरी-सर

हल्की-हल्की ठंड पड़नी शुरू हो चुकी थी, दीपावली अभी-अभी घर से होकर गयी थी. जेब और बारिश दोनों खाली हो चुके थे, लेकिन पत्नी को उसके पैतीसवें जन्मदिन पर मसूरी घुमाने का वादा कर चुके थे, समझ नहीं आ रहा था कैसे? बच्चा भी अभी सात महीने का ही है, ऑफिस से छुट्टी मिलना भी मुश्किल लग रहा था. यह सब सोचते-सोचते शर्माजी के हाथ से चाय का कप छूट गया, मगर हाथ जला नहीं, क्योंकि चाय ठंडी हो चुकी थी. मिसेज शर्मा ने आकर फर्श पर गिरी हुई चाय तो साफ कर दी, मगर शर्माजी से यह तक नहीं पूछा कि चाय से जले तो नहीं क्योंकि उनको लग रहा था कि शर्माजी ने चाय जानबूझ कर अपने ऊपर गिरा ली होगी, जिस से यह संदेश जाये कि मसूरी जाने के खर्च के बारे में सोचते हुए उनको कुछ होश ही नहीं रहा और नुकसान कर बैठे. वो सुना है न इमोशनल ब्लैकमेलिंग. मगर मिसेज शर्मा के ऊपर अपने पति के इस पैंतरे का असर नहीं पड़ना था क्योंकि शर्माजी ने खुद ही वादा किया था घुमाने का.

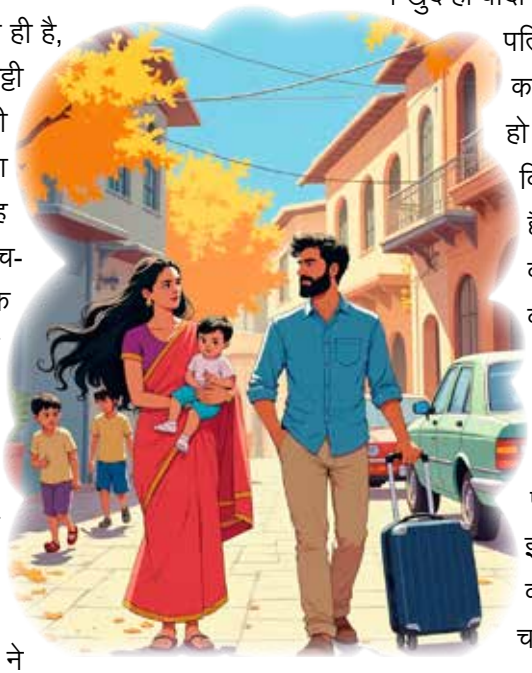

पत्नियाँ भी न कभी-कभी बहुत पत्थर दिल हो जाती है, पति को कितनी मुश्किल होती है सब व्यवस्थित करने में उससे इनको कोई फर्क नहीं पड़ता वैसे एक बात कहूँ शर्माजी ने सच में चाय गिरने की एक्टिंग की थी इमोशनल ब्लैकमेल करने के लिए, वरना चाय गरम न होती?

खैर पत्नी न मानी तो चल पड़े. मुझे फोन किया कि मंगलवार को गाड़ी ले आना 4-5 दिन के लिए मसूरी चलना है, अब मेरी क्या जरूरत? मैं कौन? अरे मैं वही हूँ ट्रैवल एजेंसी में काम करने वाला ड्राइवर जो

तोता-मैना की इस जोड़ी को कई सफर में झेल चुका है. मन तो नहीं था पर दिवाली के बाद मेरी जेब भी खाली हो गयी थी तो चल पड़े पहाड़ों की तरफ. देहरादून से थोड़ा आगे मलसी से ही ठंड का एहसास होने लगा था, मसूरी पहुंचते-पहुंचते ठीक-ठाक ठंड शुरू हो गयी थी. शाम हो चुकी थी, होटल में चेक-इन कर लिया था. और होटल की पार्किंग में अपनी गाड़ी, जो कि मेरा चलता फिरता घर था उसी में आराम करने लगा.

अगली सुबह ठंडे पहाड़ों से टकरा कर जब सूरज की किरणें गाड़ी के शीशों को चीरती हुई जब मुझ पर पड़ी तो आँख खुल गयी. जल्दी से तैयार हुआ. ठीक 10 बजे शर्मा परिवार नीचे आया और हम सब कैंपटी फ़ॉल्स की तरफ निकल पड़े. लगभग 1 घंटे के सफर के दौरान सात माह के छोटे शर्मा ने रो-रो कर आफत मचा दी. सारा दिन हम लोग कैंपटी फॉल्स और आस-पास के इलाकों में घूमते रहे. एक बात तो आपको बताना भूल ही गया, मैं केवल ड्राइवर ही नहीं था, बल्कि बीच-बीच में फोटोग्राफर और बेबी-सिटर का रोल भी निभा रहा था. मियां-बीबी मुझे बच्चा पकड़ा कर पहाड़ो की तरफ देखते हुए खो जाते थे और छोटा बच्चा मेरी नाक में दम कर देता था. शाम तक यूं ही चलता रहा. 4 बजे वापस होटल के लिए निकल पड़े. क्योंकि थोड़ी देर आराम करके रात्रि 8:30 बजे से मसूरी की मॉल-रोड पर रात्रि-भ्रमण का कार्यक्रम था.

रात्रि का भोजन करके हम चारों लोग निकल पड़े मॉल-रोड पर. आप में से जो लोग भी मसूरी गए होंगे वो अच्छी तरह से जानते होंगे कि मसूरी में रात्रि-भ्रमण करना वो भी मॉल-रोड पर कितना रोमान्चक होता है. हम लोग पिक्चर पैलेस चौक की तरफ से चले थे और लाइब्रेरी चौक तक चलकर फिर वापस भी आना था. मैं तो कई बार टूरिस्टों को लेकर मसूरी आ चुका था मगर मुझे भी यह जगह अच्छी लगती थी तो मैं भी साथ-साथ ही चल रहा था. रास्ते में रुक-रुक कर फोटो ले रहा था मगर मैंने इस बार बच्चा पकड़ने से साफ मना कर दिया था. वो लोग आनंद लेने के लिए आए थे और छोटा बच्चा गोद में लेकर ढलानों और चढ़ावों पर चलने से थकान होना पक्का था. उनको समझ नहीं आ रहा था कि क्या किया जाये. थोड़ी दूर आगे बढ़े ही थे कि अचानक एक जगह पर सड़क के किनारे तीन-चार बच्चा गाडियां खड़ी दिखाई दीं, हर गाड़ी पर एक-एक स्लिप चिपकी थी जिस पर लिखा था 1 घंटे का 100 रूपए. शर्माजी की नज़र उन गाड़ियों पर पड़ी, उन्होंने गाड़ियों के मालिक से बात की, और एक बच्चा गाड़ी बुक कर ली. यहाँ पर एक खास बात यह थी कि बच्चा गाड़ियों का मालिक तो उम्रदराज था, लेकिन बच्चा गाड़ी को पकड़ कर चलने वाले जो उसके नौकर थे, उनमें से किसी की भी उम्र 10 वर्ष से ज्यादा नहीं लग रही थी. व्यक्ति ने घड़ी में टाइम देखकर 9 बजकर 10 मिनट

पर 9 साल के जीतू को बच्चा गाडी की ज़िम्मेदारी देकर हम लोगों के साथ भेज दिया. शर्मा दंपति को तो जैसे भगवान मिल गया हो, उन्होंने पूरी तरह से छोटे बच्चे को जीतू के हवाले कर दिया, मुझसे नज़र रखने को कहा और दोनों लोग एक-दूसरे की बाहों में बाहें डालकर मसूरी के रात्रि-भमण का मज़ा लेने लगे. वो लोग हम तीन लोगों से थोड़ा आगे चल रहे थे, बीच में दोनों बच्चे और सबसे पीछे मैं चल रहा था, मुझे "नज़र" जो रखनी थी. छोटे शर्मा के दाहिने हाथ में एक गुब्बारा बांध दिया गया था और दूसरे हाथ में मुँह में घुल जाने वाली चॉकलेट पकड़ा दी गयी थी, जिससे कि वो रोए नहीं. जब गुब्बारा और चॉकलेट दी जा रही थी तो जीतू ही दोनों चीजों को व्यवस्थित कर रहा था. एक तरह से वो छोटे बच्चे के बड़े भाई की भूमिका में था, वो बड़ा भाई जो खुद अभी केवल 9 साल का था.

मैंने देखा मॉल रोड पर जगह-जगह ऐसी बच्चा गाड़ियों की टोलियाँ खड़ी थीं. जीवन-यापन के लिए बहुत ढूंढ़ा मगर कोई भी बच्चा गाड़ी चालक 10 वर्ष से ज्यादा का नहीं मिला. मन नहीं माना तो एक जगह रुक कर पूछताछ की तो पता चला कि वो सभी बच्चे दूर दराज़ के पहाड़ी इलाकों से आए थे, घर में आर्थिक तंगी की वजह से कम उम्र में उन्हें यह कार्य करना पड़ रहा था. जब जीतू से पूछा तो उसने बताया कि उसके पिता एक बिस्कुट बनाने वाली कंपनी में काम करते थे, किसी बीमारी की वजह से उनकी मृत्यु हो गयी थी, सो घर खर्च में माँ का हाथ बंटाने के लिए वो यह कार्य करता था. उसको घंटे के 100 रुपये मिलते थे, 30 रुपए कमीशन उसका मालिक रख लेता था और पूछने पर उसने बताया कि उसके ग्रुप के कुछ बच्चे स्कूल जाते थे कुछ नहीं जाते थे. जो स्कूल जाते भी थे वो भी रोज़ नहीं जा पाते थे. 9-10 साल के इन बच्चों को देखकर मन व्यथित हो उठा था. मसूरी की सड़कों पर ये बच्चे उन दंपतियों के छोटे बच्चों के सारथी बने थे, जो हमारे तथा-कथित संभ्रांत और संस्कारी समाज के ठेकेदार बनने की वाह-वाही में रहने वाले लोग थे. कुछ दंपतियाँ तो ऐसी भी होंगी, जो समाज-सेवा, मानवाधिकार आदि के लिए काम करने वाले 64 लोग होंगे. सफर का असली रस अब आया था.

"बच्चा-गाड़ी" आगे बढ़ चली थी. छोटा बच्चा चाकलेट और गुब्बारे की मस्ती में अपने छोटे से मुंह से कुछ गुनगुना रहा था, और उसके माता-पिता इससे बेखबर अपने "सेलिब्रेशन" में मस्त थे. बीच- बीच में वो छोटे शर्मा को कुछ-न-कुछ खरीद कर दे रहे थे, बच्चा गाड़ी खिलौनों और खाने-पीने की चीजों से भर गयी थी. उन खिलौनों और चीजों को देखकर ही जीतू भी अपना मन भर ले रहा था और मेरी भी आंखे भर आयीं थीं, क्योंकि मैं "नज़र" रख रहा था.

चलते-चलते एक बेकरी दिखाई पड़ी, उसमें से आधा किलो का एक फ्रूट-केक खरीदा गया. बेकरी के सामने सड़क के उस पार बैठने वाली एक सीट पड़ी थी, जिसका मुंह घाटी की तरफ था. सीट पर बैठ कर रात्रि में ऊँचाई से घाटी की तरफ देखने पर देहरादून शहर रोशनी से झिलमिलाता हुआ दिखाई देता था. यही सबसे सही जगह लगी केक कटिंग करने के लिए. केक को सीट पर रखा गया, शर्माजी ने गुलाब का एक फूल पत्नी को देते हुए अपने असीम प्रेम का इज़हार किया. पत्नी ने केक काटा, मैंने और जीतू ने तालियाँ बजाई, छोटा बच्चा गुनगुनाता रहा, घाटी की तरफ से आने वाली सर्द हवा ने गुलाब के फूल की दो-चार पंखुड़ियाँ गिरा दी, मौसम में खुशबू भी घुल गयी. कैमरे से इन पलों की तस्वीरें ली गईं, सेलिब्रेशन हो रहा था. शर्मा दंपति झिलमिलाते मसूरी का मजा ले रहे थे, तभी छोटे बच्चे की ज़ोर से रोने की आवाज़ सुनाई पड़ी. शर्माजी ने पीछे घूम के देखा तो पता चला कि बच्चा गाड़ी से जीतू ने एक खिलौना कौतूहलवश उठा लिया था और वह उस खिलौने को देख रहा था. अपना खिलौना जीतू के हाथों में देखकर छोटा बच्चा रोने लगा था. इतना देखते ही शर्माजी आगबबूला हो गए, जीतू को ज़ोर से एक चांटा लगा दिया. जीतू की आँखें छलछला आयीं. शर्माजी ने गुर्राते हुए कहा- "तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई मेरे बच्चे के खिलौने से खेलने की? तुमने रुला दिया बच्चे को. . . . और भी बहुत कुछ. जीतू ने हाथ जोड़कर माफी मांगते हुए अपनी थोड़ी तुतलाती-थोड़ी लड़खड़ाती हुई जुबान से डरते हुए कहा "सॉरी-सर". जन्मदिन मुबारक हो चुका था.

राजीव यादव

■■■

सर्किट काका

देहरादून का वह एक छोटा सरकारी अस्पताल था, जिसमें विक्षिप्त से दिखने वाले उस बुजुर्ग को भर्ती किया गया था, जिसके लंबे उलझे हुए बाल थे. चेहरा दाढ़ी और मूछों से लगभग ढँका हुआ था और मैला-कुचैला परिधान उसकी दरिद्रता की सारी कहानी कह रहा था.

जो लोग उसे भर्ती करवाने आए थे उनमें कोई भी उसका रिश्तेदार नहीं था, उनके बीच मात्र एक मामूली जान पहचान और ग़रीबी का रिश्ता था. वो सभी उसे सर्किट काका कह कर पुकारते थे. तक़रीबन पाँच वर्षों से यह बुजुर्ग उनके साथ था.

शहर के दूरस्थ इलाक़े में सड़क के पुराने जीर्ण-शीर्ण ओवरब्रिज के आसपास कई ढाबे, चाय की गुमटियाँ, पान-ठेले अब भी यथावत थे जबकि अब यहाँ ट्रैफ़िक और आवाजाही पहले जैसी नहीं रही थी. अब सारा यातायात नए ओवरब्रिज और सड़क से होकर गुज़रता था. हाँलाकि यह सड़क अब भी चालू थी और इन सबका गुज़ारा चल ही जाता था. यहीं पास की बस्ती में सबके घर थे, मगर “सर्किट काका” नामक यह बुजुर्ग यहीं जगदीश के ढाबे पर रहा करता था. जगदीश उसे कुछ वर्ष पहले रेलवे प्लेटफॉर्म से ले आया था तब से उसका यही ठिकाना था. उसका नाम “सर्किट काका” मन्नू हलवाई का दिया हुआ था. सर्किट काका सुनता तो था मगर कुछ बोल नहीं पाता था. यद्यपि कभी कभी कुछ बुदबुदाता ज़रूर था, मगर वह क्या बोलता था किसी के पल्ले कुछ नहीं पड़ता था. कितनी ही बार उससे पूछा गया किंतु वह अपने बारे में कुछ नहीं बता पाया था. इन्हीं दुकानों पर उसका खान-पान निर्भर था जिसके एवज़ में वह बर्तन धोने और पानी भरने जैसे कार्य करता रहता था. उसकी इसी अवस्था पर कुछ लोग उससे मज़ाक़ किया करते तो मन्नू कहता था- “इसका दिमाग़ का सर्किट ढीला है.”

बस यहीं से उसका नाम सर्किट पड़ गया. चूँकि उम्र में वह लगभग पचपन साठ वर्षीय दिखता था अतः उसे सभी सर्किट काका कहने लगे थे.

पिछली रात बारिश हुई थी और सुबह जगदीश ने ढाबे से कुछ दूर सर्किट काका को बेहोश पड़ा पाया. अंदाज़ यही लगाया गया कि बिजली पोल के पास शायद वह पेशाब के लिये गया था और गीली ज़मीन के कारण उसे तगड़ा झटका लगा था. साँसे चलती देख कर जगदीश और कुछ बस्ती के लोग उसे अस्पताल ले आए थे. स्थिति अभी गम्भीर थी.

ढाबे के ही एक लड़के को अस्पताल में तैनात करके जगदीश ढाबे पर चला आया.

इतने वर्षों से जब कोई साथ में हो तो एक व्यक्तिगत जुड़ाव तो हो ही जाता है, शायद जगदीश भी यही महसूस कर रहा था. कितनी तन्मयता से सर्किट काका ढाबे के कार्य में हाथ बँटाता था. एवज़ में क्या, सिर्फ़ दो वक़्त की रोटी और सोने को बिस्तर और उस पर भी ढाबे की रखवाली अलग.

ढाबे पर जगदीश का मन न लग रहा था. पानठेले वाले लखन दाऊ के साथ वह पुनः अस्पताल आ गया. यहाँ पहुँच कर उन्हें पता चला कि सर्किट काका को होश आ गया है और उन्हें जनरल वार्ड में शिफ़्ट कर दिया गया है. यह बड़ी राहत की ख़बर थी मगर, जनरल वार्ड के मरीज़ों की लिस्ट में सर्किट काका की कोई एंट्री नहीं दिख रही थी अतः उन्होंने सारे जनरल वार्ड खँगालने शुरू कर दिये. ढाबे का जो लड़का अस्पताल में रख छोड़ा था वह भी कहीं दिखाई नहीं दे रहा था.

अंततः जनरल वार्ड क्रमांक चार में सर्किट काका बिस्तर पर उनींदे से लेटे दिखे. लड़का भी समीप के टूल पर बैठा था. पलंग पर जो मरीज़ की एडमिशन शीट लगी थी उस पर काका का नाम पुरुषोत्तम यादव लिखा था.

यह पुरुषोत्तम कौन है ? जगदीश ने लड़के से पूछा.

सन दो हज़ार तेरह की इस कार दुर्घटना में पुरुषोत्तम की याददाश्त गई और अब आठ वर्ष बाद उसे कुछ याद आ रहा है वो भी बिजली का झटका लगने से ?

लड़के ने सर्किट काका की तरफ़ इशारा करते हुए बताया कि इनका नाम है.

यह बड़े अचरज की बात थी. पिछले पाँच वर्षों में यह नाम किसी को नहीं पता था और पता चलता भी तो कैसे, सर्किट काका बोल तो पाता नहीं था. उसके बारे में इसीलिए अब तक कोई जानकारी नहीं थी सिवाय इसके कि वह रेलवे स्टेशन पर भीख माँगता था.

“यह नाम किसने लिखवाया?” लखन दाऊ ने लड़के से पूछा.

“इन्हीं ने ..... ख़ुद बोल कर बताया.” लड़का बोला.

इसी समय डॉक्टर की विज़िट हुई. उनका यही कहना था कि बिजली का झटका लगने के कारण वो बेहोश थे अब उनकी हालत ख़तरे से बाहर थी.

किंतु जगदीश और लखन के लिये अचरज का विषय यह था कि सर्किट काका ने उन्हें बोल कर अपना नाम बताया था जबकि वह बोल ही नहीं सकता था.

डॉक्टर साहब ने काका की नब्ज़ चेक की और पूछा - अब कैसा लग रहा है ?

“ठीक हूँ डॉक्टर साहब!”

पहली बार सर्किट काका की आवाज़ से दोनों हैरान थे. काका उन्हें पहचान भी रहा था और एक हल्की सी मुस्कान उसके चेहरे पर थी.

डॉक्टर ने अन्य मरीज़ों के चेकअप के बाद दोनों को केबिन में मिलने बुलवाया.

दोनों ने उन्हें पूरी बात बताई.

डॉक्टर का कहना था कि होश में आने के बाद से वो नॉर्मल बातचीत कर भी रहे हैं और समझ भी रहे हैं. यदि ऐसी बात है तो फ़िलहाल उनके पूर्णतः स्वस्थ होने तक उनसे बहुत अधिक बात या प्रश्न करना मुनासिब नहीं होगा. क्योंकि यह उनकी याददाश्त वापस आने का संकेत है. सम्भवतः यह बिजली के झटके के कारण हुआ है और यह मरीज़ के लिये एक अच्छी बात है.

दो दिन बाद उनकी अस्पताल से छुट्टी हो गई. जगदीश उन्हें अपने घर ले गया. घर के बरामदे में उनके आराम की व्यवस्था कर दी गई. घरेलू माहौल में सर्किट काका को बहुत कुछ याद आने लगा—अपना परिवार, गाँव, बच्चे मगर नाम किसी का याद नहीं आता था. अक्सर वो टूटी फूटी भाषा में एक चोर और एक्सीडेंट का ज़िक्र करते थे. चूँकि डॉक्टर की सख़्त हिदायत थी कि उनसे बहुत अधिक प्रश्न न किये जाएँ अतः स्वेच्छा से काका जो बड़बड़ाते या बताते, उसे ध्यान में रखा जाने लगा.

कुछ दिनों में काका वापस काम पर आने लगे, फ़र्क़ यह हुआ कि अब वो पूरे पूरे वाक्य बोलने लगे थे. उनकी हालत और याददाश्त में तेज़ी से सुधार हो रहा था. अब वो कटिंग और दाढ़ी बनाने पर भी ध्यान देने लगे थे.

सर्किट काका की बॉयोमेट्रिक से आधार कार्ड की पहचान की कोशिश की गई मगर यहाँ भी असफलता हाथ लगी. अजीब बात थी मगर ऐसे बहुत से लोग थे और आज भी हैं जिनके आधार कार्ड नहीं बने.

एक दिन एक अजीब बात हुई. ढाबे पर किसी ग्राहक द्वारा हरिद्वार जाने का ज़िक्र करते ही काका कुछ असहज से हो गए. उनके मन-मस्तिष्क में जैसे भूचाल आ गया. लगभग पंद्रह-बीस मिनट वो जैसे स्वयं से लड़ते रहे.

उन्हें जो याद आया वह इतना था कि वो हरिद्वार में सड़क पर अपने किसी मित्र का इंतज़ार कर रहे थे जिसके साथ उन्हें केदारनाथ दर्शन के लिये जाना था. तभी उनका बैग एक चोर ले भागा और उसके पीछे दौड़ते हुए वो एक कार से टकरा गए थे.

वो कहाँ से आए थे यह उन्हें अभी भी याद नहीं आया था.

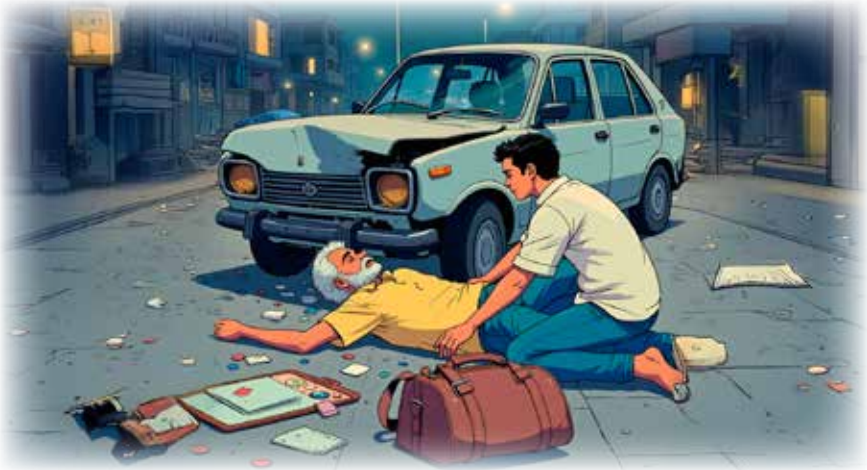

यानी वह बैग जो चोरी हुआ था उसमें ज़रूर इनकी पहचान के कुछ दस्तावेज़ रहे होंगे.

जगदीश ने साहस कर के उन्हें उनके असली नाम से सम्बोधित करके प्रश्न कर ही दिया- पुरषोत्तम जी, आपका वह मित्र कौन था और कहाँ से आने वाला था ?

इस बार काका को अधिक सोचना नहीं पड़ा.

“दिल्ली से सुदर्शन बारस्कर “.

इससे अधिक न वो याद कर पाए न उन पर दबाव डाला गया.

जगदीश और उसके कुछ मित्रों ने अब यह ठान लिया था कि सर्किट काका उर्फ पुरुषोत्तम यादव को किसी भी सूरत में उनके परिजन के पास पहुँचाना है. उनके परिवार ने उन्हें बहुत खोजा होगा.

इस सुदर्शन बारस्कर नामक व्यक्ति की खोज कैसे हो, यह एक असम्भव सा कार्य था.

चूँकि सुदर्शन उनका मित्र था अतः यह निश्चित था कि उसकी उम्र भी लगभग वही होगी.

कुछ बच्चों द्वारा फ़ेसबुक पर ऐसे नाम की खोज की जाने लगी ऐसे कई सुदर्शन बारस्कर दिल्ली के निकले. कुछ में प्रोफाइल तस्वीर नदारद तो कुछ में मोबाइल नम्बर.

कोई ज़रूरी नहीं था कि यह सुदर्शन बारस्कर फेसबुक पर हो, मगर दिल्ली में तीन सुदर्शन बारस्कर ऐसे थे जिनमें उनकी फ़ोटो नहीं थी मगर उनकी उम्र लगभग यही थी जो सर्किट काका की थी.

तीनों को फ्रेंड रिक्वेस्ट भेज दी गई.

इधर सर्किट काका को कुछ और याद नहीं आ रहा था. जगदीश के लिये पहले सर्किट काका एक नौकर से अधिक कुछ न थे मगर अब उनके प्रति आत्मीयता और संवेदना उसके मन में थी.

आख़िर फेसबुक पर दो फ्रेंड रिकवेस्ट स्वीकार हो गईं और उनके मोबाइल नम्बर भी प्राप्त हुए. दोनों से सम्पर्क किया गया किंतु यह दोनों किसी पुरुषोत्तम यादव को नहीं जानते थे.

जगदीश का मन अब काम में नहीं था बल्कि उसकी दिलचस्पी अब सर्किट काका और उसके परिवार को लेकर थी. संभव था कि काका का दुनिया में कोई न बचा हो, संभव है कि उन्हें घरवालों ने ही घर से निकाल दिया हो, या कोई उन्हें ढूँढ़ रहा हो, यह सारी सम्भावनाएँ समक्ष थीं क्योंकि विगत पाँच वर्ष से तो वो उसी के साथ थे. उसका सोचना था कि काका की याददाश्त आ जाती तो उन्हें सम्भवतः इस ख़ानाबदोश ज़िंदगी से निज़ात मिलती.

इसी बीच तीसरे सुदर्शन बारस्कर ने भी फेसबुक पर जगदीश की फ्रेंड रिकवेस्ट स्वीकार कर ली और उसकी लॉक्ड प्रोफ़ाइल खुल गई जिससे सुदर्शन बारस्कर और उसकी परिवार की कई तस्वीरें दिखने लगीं.

जगदीश ने यह सारी तस्वीरें काका को दिखाईं और काका चौंक कर बोल उठे - सुदर्शन !

यानी यही वो सुदर्शन बारस्कर था जिसकी तलाश थी. सुदर्शन की फ़ेसबुक की टाइम लाइन पर सर्किट काका की तस्वीर डाली गई और उनके नाम सहित पूरा विवरण डाला गया और संपर्क के लिये जगदीश ने अपना नम्बर साझा किया.

अब एक उम्मीद की किरण नज़र आई थी.

अब इंतज़ार था तो सुदर्शन जी के उस पोस्ट को देखने का.

दो दिन बाद सुबह-सुबह ढाबे की तरफ़ रवाना होते समय जगदीश का मोबाइल बज उठा. अज्ञात नम्बर को रिसीव करते ही एक काँपती आवाज़ ने प्रश्न दागा -

“कौन. . . . . जगदीश जी?”

जी, आप कौन ?

मैं सुदर्शन बारस्कर, मैंने अभी फेसबुक पर आपकी पोस्ट देखी. म. . . म. . . मैं हैरान हूँ कि पुरुषोत्तम ज़िंदा है. ह. . ह. . हम तो इसे मृत समझ बैठे थे.

जी सर, मगर उन्हें अब कुछ याद नहीं. पिछले पाँच साल से वो मेरे साथ हैं सिर्फ़ आपका नाम उनके मुँह से सुना तो हमने अँधेरे में यह तीर चलाया और किस्मत से आपसे बात हो रही है.

सुदर्शन बोले - मैं कल आपके पते पर देहरादून आ रहा हूँ शेष बातें वहीं करेंगे.

अगले ही दिन सुदर्शन जी बेसब्रों की तरह अपनी कार से ड्राइवर समेत ढाबे पर उपस्थित थे. जगदीश उन्हें घर ले आया. सर्किट काका उर्फ़ पुरुषोत्तम यादव उन्हें पहचान गए. अभी दो तीन दिन पहले ही तो उन्होंने सुदर्शन की तस्वीर देखी थी अन्यथा शायद यह सम्भव न होता.

सबसे पहले सुदर्शन जी ने जगदीश का आभार व्यक्त किया और इस विषय में बताना आरम्भ किया.

यह बात है सन् 2013 जून की. . . . . पुरुषोत्तम सहित मेरे चार मित्र बाबा केदारनाथ यात्रा के लिये अपने गाँव बाजपुर ज़िला अनूपपुर मध्यप्रदेश से रवाना हुए थे. मैं चूँकि दिल्ली में था अतः मैंने उनसे सीधे हरिद्वार में मिलने का फ़ैसला किया. हम पाँचों मित्र वहाँ से साथ ही केदारनाथ दर्शन के लिये जाने वाले थे. हमारे तीन मित्र हरिद्वार से एक दिन पहले ही केदारनाथ यात्रा के लिये निकल पड़े किंतु फोन पर बातचीत के बाद पुरुषोत्तम मेरे इंतज़ार में हरिद्वार में रुक गया.

मैं हरिद्वार पहुँचता इसके पहले ही मंदाकिनी घाटी में नदी की बाढ़ ने भीषण तबाही मचा दी. हज़ारों लोग काल का ग्रास बन चुके थे. मैंने पुरुषोत्तम से सम्पर्क किया मगर उसका मोबाइल बंद था. मेरे शेष तीन मित्रों से भी मोबाइल पर संपर्क नहीं हो पाया. हरिद्वार में जिस होटल में हमारे मित्र रुके थे वहाँ भी पता किया गया किंतु यह सभी रूम छोड़ चुके थे. बहुत खोजबीन के बाद भी किसी का कोई पता नहीं चला. एक दो वर्ष तक सभी के परिवार मुझसे संपर्क करते रहे किंतु उसके बाद शायद सभी ने मान लिया कि चारों केदारनाथ त्रासदी के शिकार हो गए हैं. सुदर्शन ने अपनी बात ख़त्म की.

यह बात सर्किट काका भी सुन रहे थे. सुनकर तो जैसे उनके भीतर एक तूफ़ान सा उठ गया. वो बरामदे में चहल क़दमी करने लगे. . . . उन्हें पानी पिलाया गया.

इसके आगे का हरिद्वार एक्सीडेंट का वृत्तांत जगदीश ने सुनाया.

“इसका अर्थ यह हुआ कि सन दो हज़ार तेरह की इस कार दुर्घटना में पुरुषोत्तम की याददाश्त गई और अब आठ वर्ष बाद उसे कुछ याद आ रहा है वो भी बिजली का झटका लगने से ?. . .” सुदर्शन बोले.

“और उसके बाद वो ट्रेन और रेलवे स्टेशनों पर भीख माँगते रहे और एक दिन मैं उन्हें अपने ढाबे पर ले आया तब से वो यहाँ सर्किट काका के नाम से जाने जाते हैं”- जगदीश बोला.

सुदर्शन जी ने बताया कि पुरुषोत्तम के परिवार में उनकी पत्नी और दो बेटे थे जो कई बार उनकी तलाश में उनके पास दिल्ली तक आए थे. मगर अब उनके पुराने मोबाइल नम्बर भी बंद हो चुके हैं.

फिर भी उनका पता किया जा सकता है.

नहीं. . . उन्हें घर तक मैं पहुँचाऊँगा, जगदीश बोला. यदि आप भी साथ चलें तो और अच्छा होगा.

सुदर्शन जी ने इसमें अपनी सहमति दर्शाई और यह तय किया कि वो जगदीश के साथ पुरुषोत्तम को लेकर बाजपुर ज़रूर चलेंगे.

जगदीश तो एक पाँव पर तैयार था आख़िर उसकी मेहनत रंग जो ला रही थी. रास्ता बहुत लंबा था. तत्काल में रिज़र्वेशन करवाया गया और ठीक दो दिन बाद वे तीनों अनूपपुर से बाजपुर जाने वाली बस में बैठे थे.

आठ साल में यह रास्ता बहुत बदल गया था किंतु जैसे जैसे बाजपुर समीप आता गया पुरषोत्तम के चेहरे के हाव भाव बदलने लगे मानो उसकी याददाश्त लौट-लौट कर ख़ुशियों के द्वार पर दस्तक देने को आमादा हो. बस स्टैंड पर उतर कर पुरुषोत्तम के पाँव अपने आप अपने घर की ओर बढ़ चले. वह आगे-आगे तो जगदीश और सुदर्शन पीछे-पीछे. गाँव के पीपल और चौपाल को इशारे से दिखा कर वह जिस आनन्द की अनुभूति कर रहा था वह अवर्णनीय थी. उसकी याददाश्त तेज़ी से वापस आ रही थी. गलियारों से होकर वह एक घर के सामने ठहर गया. उसे आसपास ही अपना घर होने का अंदेशा था. जगदीश ने उसी घर के आँगन में झाड़ू लगाती एक बुजुर्ग महिला से प्रश्न किया - अम्मा, यादव जी का घर किस तरफ़ है ?

महिला ने झाड़ू लगाते हुए उचटती निगाह से तीनों को देखा और प्रतिप्रश्न किया - कौन से यादव ? नाम बताओ.

अचानक सर्किट काका उसे देख कर बोल पड़े - “सत्तो” !

यह स्वर सुनते ही महिला ठिठक गई. झाड़ू उसके हाथ से छूट गई और उसका मुँह खुला रह गया. उसने घूम कर पुरुषोत्तम को देखा क्योंकि उस सतवंती को इस लहजे से सत्तो कहने वाला दुनिया में दूसरा नहीं हो सकता था.

राजकुमार कोरी “राज”

■■■

एक मौन संवाद

चींटी को देखा,
वह सरल, विरल, काली रेखा
तम के तागे सी जो हिल-डुल
चलती लघुपद, पल-पल मिल-जुल
वह है पिपीलिका पाँति
देखो न किस भाँति
काम करती वह सतत.

प्रकृति प्रेमी कवि सुमित्रानंदन जी की ये पंक्तियाँ जब हमारे पाठ्यक्रम में पढ़ाई गईं तो कई सहपाठियों को स्पष्ट नहीं हो पाया कि कवि क्या कहना चाह रहा है और चींटी सतत किस कर्म में लिप्त है. परंतु मुझे ये पंक्तियाँ न केवल समझ में आईं अपितु ये मेरी बहुत प्रिय पंक्तियां भी बन गईं. चूंकि मैंने अपना बचपन पशु- पक्षियों के बीच बिताया है तो मैं उनकी जीवनचर्या से भलीभांति परिचित हूँ.

आज जब मैं जीवन में पीछे मुड़ कर देखता हूँ तो महसूस करता हूँ कि समय के साथ-साथ हमारा समाज, हमारे गाँव, हमारी दुनियाँ कितनी बदल चुकी है. मेरा जन्म बिहार राज्य के तेघड़ा गाँव में हुआ. मेरे पिताजी एक कृषक थे. यह सत्तर के दशक का समय था जब देश में उपभोक्तावादी संस्कृति का इतना प्रभाव नहीं था और कृषि देश की अर्थव्यव-स्था की रीढ़ की हड्डी हुआ करती थी. अपने बाल्यकाल का प्रारंभिक समय मैंने गाँव में ही बिताया. कृषि और पशुपालन के इस नैसर्गिक वातावरण ने प्रकृति के साथ मेरा एक अद्भुत रिश्ता स्थापित किया. मुझे दरवाजे पर खेलने के अपेक्षाकृत धान -गेहूँ के फसल के मेड़ पर चलना अधिक भाता. दरवाजे पर लगे गुलाब, गुड़हल से अधिक आकर्षित मुझे सरसों, चने और अरहर के फूल लगते. बसंत की पूर्ण मादकता का अनुभव तो आम्र मंजरी की महक के साथ ही आता. इसकी गंधवहता में मैं इस

कदर बहक जाता कि बसंत के आगमन से खुश होकर आम्र बाग में जाकर कोयल के कू -कू के स्वर के साथ घंटों सुर में सुर मिलाया करता. आलम यह था गरमी के मौसम का अधिकांश समय इसी क्रिया कलाप में आम्र बाग में ही गुजर जाता.

हमारी गौशाला में कुछ गायें व खेत में काम करने वाले बैल भी थे. अपने मित्रों के साथ खेलने की अपेक्षा मुझे इन पशुओं के साथ खेलना अधिक पसंद था. मैं उनसे बातें भी करता, उनके हाव-भाव मुझे बता देते कि वह क्या कहना चाहते हैं. मुझे यही अनुभव हुआ कि यह निरीह पशु केवल प्यार की भाषा समझते हैं. इसकी वफादारी एवं प्रेम मिसाले काबिल है.

मेरे पिताजी एवं चाचाजी मेरे इस प्रकृति प्रेम को देखकर बहुत खुश होते थे. उनकी यह अटूट आस्था थी कि पंच तत्वों से निर्मित सारे प्राणी तभी हर्षोत्फुल होते हैं जब वे इन तत्वों के संसर्ग में होते हैं. इसलिए वह अक्सर कहा करते थे – जब व्यक्ति तरोताजा नहीं महसूस करते है तो जल से स्नान कर तरोताजा महसूस करते हैं;जब सिर में दर्द हो तो स्वच्छ हवा के सेवन से ही राहत मिलती है; जब हम थक जाते हैं तो धरती पर सोने अथवा नरम घास पर चलने से ही आराम मिलता है. जब हम अधिक ठंड महसूस करते हैं तो आग तापने में जो आनंद मिलता है वह हीटर की ऊष्मा से नहीं मिलती. नदी या समुद्र से आती हवा से हमें जितना फ्रेशनेस महसूस होता उतना ए. सी.

समय के साथ-साथ शिक्षा के बढ़ते बोझ के कारण मैं प्रकृति से दूर होता रहा. यह वह समय था जब देश में कृषि की अपेक्षा सरकारी नौकरी को अधिक महत्व दिया जाने लगा था.

की हवा में नहीं. आकाश की ओर मुख करके चाँद तारों को निहारने से जो सुकून मिलता है वह भौतिक संसाधनों में नहीं. इस पूर्वाग्रह से ग्रसित होने के कारण वे कभी भी मेरी बाल सुलभ चेष्टाओं पर लगाम नहीं लगाए.

वे अक्सर कहा करते थे कि प्रकृति से दूर जाना रोग का कारण है एवं प्रकृति के करीब रहना स्वस्थ रहने का नुस्खा. अगर हम प्राकृतिक भोज्य पदार्थ से कफ, पित्त एवं वात को संतुलित रखते हैं तो हम कभी बीमार नहीं पड़ेंगे. धरती माँ ने इस सृष्टि की रक्षा के लिए बहुत सारे आयुर्वेदिक जड़ी-बूटियाँ एवं पौधे अपने कोख में पाले हैं. इसलिए उचित उपचार हेतु इन्हें पहचानना होगा. इसी विचार से वे हमें कभी-कभी पौधों की विभिन्न प्रजातियों से रूबरू करवाते रहते. उसकी वृद्धि के लिए उचित मौसम तापक्रम एवं तत्वों से अवगत कराते रहते. उसमें लगने वाले रोगों एवं उसका उपचार के संबंध में भी हमें बताते रहते. वह अक्सर कहते पर्यावरण संरक्षण एवं सुरक्षा हमारी मौलिक ज़िम्मेदारी है. किन्तु भौतिक सुख की लालसा में मानव बेतरतीब प्रकृति का दोहन कर रहा है. प्रकृति से जो पदार्थ हम जिस मात्रा

में ले रहे हैं अगर उसी मात्रा में नहीं देंगे तो प्राकृतिक असंतुलन पैदा होगा एवं समस्त जीवन खतरे में आ जाएगा. उनकी यह बातें मेरे मन में इस कदर घर कर गई कि हमें यह एहसास होने लगा प्रकृति एक खुला एवं विशाल विश्वविद्यालय हैं. इससे शिक्षा लेकर निश्चित रूप से प्रकृति की सेवा में कुछ अनूठा कार्य किया जा सकता है.

समय के साथ-साथ शिक्षा के बढ़ते बोझ के कारण मैं प्रकृति से दूर होता रहा. यह वह समय था जब देश में कृषि की अपेक्षा सरकारी नौकरी को अधिक महत्व दिया जाने लगा था. कुछ समय बाद स्नातक परीक्षा पास करने के बाद मेरी नियुक्ति बैंक में हो गई. मुझे पहली पोस्टिंग गुजरात राज्य के अहमदाबाद शहर में मिली. वैसे तो अहमदाबाद एक व्यापारिक केंद्र है किन्तु यह अपने आँचल में बहुत सारे इतिहास को समेटे है. यहाँ की मौसम की शुष्कता, हमें बारंबार बढ़ते मरुस्थलीय प्रभाव का आभास करा जाता है. हम दुखी हो जाते अगर मानव इसी तरह वन एवं जल सम्पदा का दोहन करता रहा तो कई प्रजाति के वृक्ष एवं पशु पक्षी नष्ट हो जाएंगे एवं प्राकृतिक असंतुलन बढ़ेगा; तरह - तरह के नए जीवाणु एवं विषाणु पनपेंगे जो जन – जीवन के लिए खतरे का कारण बनेगा.

अहमदाबाद का हाल यह था कि गर्मी के मौसम में दिन का तापमान 47-48 डिग्री तक पहुँच जाता था. मेरी धर्मपत्नी को यह गर्मी असहनीय लगती थी और उन्होंने गर्मी के मौसम को अपने मायके में बिताने का निर्णय लिया.

पत्नी के मायके जाने के बाद मेरा अधिकांश समय बैठक कक्ष में ही बीतने लगा. फलतः शयन कक्ष प्रायः बंद ही रहता. एक रविवार को मैंने देखा कि शयन कक्ष के सीलिंग पंखे के ऊपर एक चिड़िया की युगल जोड़ी ने अपना घोंसला बना लिया है. मैं यह देखकर अत्यंत प्रसन्न हुआ. मेरी दोस्ती इस चिड़िया युगल से बढ़ती गई. मैं उनके खाने के लिए अन्न दाने एवं पानी रखकर ही कार्यालय जाता एवं शाम को भी उनके खाने का ध्यान रखता. कुछ दिनों बाद मादा चिड़िया ने चार अंडे दिए और उनसे चार चूजे निकले. इनकी चहचहाहट से घर में एक अद्भुत वातावरण सृजित हुआ. मैं लंबे समय बाद इस तरह की खुशी का अनुभव कर रहा था. एक दिन मैंने उससे पूछा तुम बाहर वृक्ष पर भी तो अपना घोसला बना सकती थी ? तो उसने कहा अंधा धुन वृक्ष की कटाई से अब लंबे एवं छायादार वृक्ष न के बराबर बचे हैं ! इस पर घोंसला बनाकर अंडे देने एवं सेने के बाद जब बच्चे निकलते हैं तो बाह्य तापक्रम के प्रभाव से हमारे कोमल बच्चे मर जाते हैं. इसालिए तुम्हारे जैसे पक्षी प्रेमी के घर में मैं घोंसला बनाती हूँ.

मन के किसी कोने में मैं इस चिड़िया के परिवार की सुरक्षा को लेकर चिंतित भी था. एक दिन वही हुआ जिसका मुझे भय था. हुआ यूँ कि मकान मालिक घर बेचने के उद्देश्य से किसी को मकान दिखाने लाए, जैसे ही उन्होंने पंखे का स्विच खोला, एक

शिशु खग घबराकर घोंसले से बाहर आ गया और पंखे की ब्लेड से टकराकर जख्मी हो गया. मैंने तुरंत पंखा बंद किया एवं उसका मलहम-पट्टी किया. माता चिड़िया जो पास के चहारदीवारी पर बैठी थी यह दर्दनाक हादसा देख पास आकर सिसकने लगी. जैसे ही मैं शिशु खग के लिए पानी लाने गया माता खग अपने शिशु के पास आयी एवं उसे गले से लगाकर सिसकती रही. जब तक मैं पानी लेकर लौटा तब तक शिशु खग मातृ क्रोड़ में जीवन के चिर सत्य को प्राप्त कर लिया था.

उसका यह रुदन देख मेरा हृदय द्रवित हो उठा. फिर भी संवेदनाहीन मकान मालिक ने मुझे ताना देते हुए कहा कि आपने घर में चिड़िया क्यों पाली हुई है. इससे गंदगी बढ़ती है; बीमारी बढ़ती है. आप लोग साफ-सफाई का बिल्कुल ही ध्यान नहीं रखते हैं. किन्तु इस भौतिकतावादी मकान मालिक को कौन समझाए कि पारिस्थिक तंत्र के संतुलन से ही जीवन निरोगी एवं संतुलित रहता है.

मैंने इस घटना के बाद घोंसले को घर में ही अन्यत्र स्थान पर शिफ्ट कर दिया. पर अब माता चिड़िया मुझसे कटी-कटी रहने लगी. मैंने एक दिन उसे अपने पास बिठाया और उसके साथ संवाद करने की कोशिश की. सांकेतिक भाषा में मैंने उससे पूछा कि मेरी तो कोई गलती नहीं है, तुम मुझसे नाराज क्यों हो. उसने क्षण भर को मुझे देखा, फिर मुझे अनुभव हुआ कि मानों वह मुझसे कह रही हो. पहले शहर में बहुत से पेड़ थे जो हमारा निवास थे, आज इंसान ने अपनी सुख-सुविधा के लिए सारे पेड़ों को काट दिया है, आज हमारे रहने के लिए कहीं जगह नहीं है. भौतिक सुख की इस लालसा में इंसान ने प्राकृतिक संतुलन को बिगाड़ दिया है. पक्षियों की कितनी प्रजातियाँ समाप्त हो चुकी हैं.

मैं अवाक था, कुछ न कह सका, सोचता रहा अगर हम पशु, पक्षियों एवं वृक्षों की भाषा को हम मानव समझ सकते तो हमारे और उनके बीच कितना मुखर संवाद होता. यह सच है हम एक दूसरे की भाषा नहीं समझ सकते. किन्तु उसकी सांकेतिक भाषा तो समझ सकते. अगर यह भी कर लें तो हमारा आधा काम हो जाएगा. अगर यह भी नहीं हो तो हम समानुभूति की बात तो समझ सकते हैं. अगर ऐसा हो जाए तो सारी समस्याओं का समाधान निकल आएगा. हम एक दूसरे के सह-अस्तित्व को स्वीकारने लगेंगे एवं सह-जीवन को अपना जीवन धर्म समझ बैठेंगे. उसी दिन से मैंने प्रण किया कि मैं अपने जीवन में सदा प्रकृति व पशु पक्षियों की भलाई के लिए काम करता रहूँगा. इस प्रकृति के रक्षार्थ सह-अस्तित्ववादी विचार धारा का प्रचार-प्रसार करूंगा एवं इस कार्य हेतु समस्त मानव को प्रेरित करता रहूँगा. अंत में यही कहना चाहूँगा...

मत लो पशु, पक्षी व वृक्ष की जान,
अन्यथा धरती हो जाएगी कब्रिस्तान!

रतन कुमार सिंह

■■■

अंतिम स्मृति

वैन का दरवाज़ा धाड़ की आवाज़ से बंद हुआ. भरी आँखों से अंतिम विदाई देकर सब वापस घर की तरफ लौट चले. घर का बड़ा सा गेट, जिसको हमेशा बंद रखने की सनक के कारण अक्सर माँ और पिताजी में झगड़ा होता था, आज पूरा खुला था, वो भी पूरे दिन के लिए. दरवाजे में घुसते ही नज़र पिताजी की सैंडिल पर पड़ी अपनी सारी यादों को बचपन से लेकर अभी तक समेट भी लूँ तो भी बाटा की इन सैंडील के अलावा उनको कभी कुछ और पैरों में पहने नहीं देखा. जूतों से तो उन्हें खासी बैर थी. आज इन्हें देखकर लगा जैसे कोई अनमोल चीज़ दिख गई हो यादों का एक तेज़ झोका बचपन की ओर ले गया, पिताजी का व्यक्तित्व हमारे पूरे परिवार में बिलकुल अलग था शायद इसीलिए वो हमारी मानसिकता में खप नहीं पाते थे. वे हमेशा से हमारे साथ नहीं रहते थे. उनका सारा जीवन लखनऊ से बहुत दूर कलकत्ता में बीता था. कर्मठ जीवन के आरंभ से ही वे वहीं व्यवसाय से जुड़ गए. वैवाहिक जीवन के शुरुआती दिनों में मम्मी साथ गईं पर पिताजी के अकेले रहने की आदत के कारण ज्यादा दिन साथ रह नहीं पाई. पति के अतिरिक्त पति के बाकी सारे परिवार के प्रति अपने कर्तव्य का निर्वाह करने, दीदी और भैया के जन्म के 5 साल बाद ही मम्मी वापस लखनऊ आ गई.

समय के चक्र की गति इतनी तेज़ होती है कि यदि आप रुक जाएँ तो सारे दृश्य ऐसे निकलते जाते हैं जैसे कभी ट्रेन में सफर करते हुए गुजरते हुए मंज़र समय के साथ हम बड़े होने लगे और पिताजी के साथ एक दूरी बन गई, वैचारिक भी. उन्होंने भी अपने आस-पास एक दीवार खड़ी कर ली थी. पिता का प्रेम ऐसा ही होता है गहरा, मगर गंभीर. हमारी सभी जरूरतें ही नहीं इच्छाएँ भी निवेदन करने से पहले पूरी हो जातीं. अपनों से जो दूरी उन्होंने बनाई थी उसकी क्षतिपूर्ति शायद वे हमें ज़रूरत से ज्यादा भौतिक वस्तुएँ देकर पूरा करते रहे. हमें भी इसी की आदत पड़ गई थी. भावनात्मक आवश्यकताएँ हमारी माँ से पूरी हो जाती थीं.

पिताजी साल में दो बार तो अवश्य आते थे, होली और दीवाली. उस वक़्त वो अल्लादीन का चिराग मालूम होते थे. हम छत की मुंडेर पर एक पैर पर खड़े होकर उनका इंतज़ार करते. बस गली में दिखते ही हम चिल्लाते "आ गए, आ गए" पिताजी भी अपनी कनखियों से हमें देखते पर चेहरे पर कोई भाव नहीं आने देते हमारा उत्साह पिताजी के आने का कम,

उनके हाथ की अटैची में ज़्यादा होता था. त्यौहार के नए कपड़े, कलकत्ते की मशहूर मिठाइयाँ, काजू की बर्फी, चमचम, मुँह में घुल जाने वाले संदेश, तीखी बेसन की भुजिया, यही सब उत्साह के केंद्र थे. बालमन भी अद्भुत है. कितना निडल, कितना सच्चा, जो हृदय में है वही चेहरे पर, पिताजी के आने के कुछ दिन तो त्यौहार जैसा माहौल ही रहता. सभी रिश्तेदार मिलने आते, समोसा, जलेबी और खस्तों की महफिल जमती, ताश खेला जाता और वी सी आर पर ढेरों पिक्चर देखी जातीं. पिताजी की हमसे बात ज्यादातर पढ़ाई तक ही सीमित थीं और वही हमें पसंद नहीं था. दरअसल, पारिवारिक जिम्मेदारियों के चलते पिताजी पढ़ नहीं पाए. ऐसा नहीं कि बिलकुल नहीं पढ़े थे पर हाँ कोई डिग्री अर्जित नहीं कर पाए थे तो उनको बड़ा शौक था कि उनकी संतान उच्च शिक्षा प्राप्त करे और हम ठहरे सामान्य बच्चे, पिता की महत्वाकांक्षाओं से हमें क्या? एक और बात थी. पिताजी ज़्यादा बोलते नहीं थे तो उनसे डर भी लगता था. वैसे यह डर बिना कारण भी नहीं था. पिताजी की तरह उनकी पिटाई भी बहुत सख्त होती थी. जैसे ही एक महीना गुज़रता हम मम्मी से पूछने लगते कि कब जाएंगे पिताजी. मम्मी के पास भी इसका उत्तर नहीं होता था. उस ज़माने में टिकट रिज़र्वेशन की इतनी मार नहीं होती थी, तुरंत मिल जाया करते थे. मम्मी कहती शायद कल जाएंगे. हम स्कूल से लौटते वक़्त यही मानते आते कि पिताजी चले गए हो. यह जानकारी घर में घुसने से पहले उनकी सैंडिल

“अब घर की धुलाई करने के बाद ही चाय बनेगी.” बुआ की तीखी आवाज़ सुनकर मैं वर्तमान में आ गई.

दिया करतीं. दरअसल पिताजी अपनी सैंडिल हमेशा बाहर सीढ़ियों पर उतारते थे सो हम आने के साथ ही सीढियाँ देखते. यह क्रम तकरीबन 15 दिन चलता. कभी-कभी हमे मजा चखाने के लिए पिताजी अपनी सैंडिल छुपा दिया करते थे और हम लोग खुशी से उचकते हुए जब अंदर पहुँचते और उन्हें अंदर पाकर ऐसी निराशा होती कि पूछो मत. और पिताजी मुस्कुरा देते.

“अब घर की धुलाई करने के बाद ही चाय बनेगी.” बुआ की तीखी आवाज़ सुनकर मैं वर्तमान में आ गई. अब पिताजी नहीं रहे! कल शाम वो अपनी अनंत यात्रा पर निकल गए. शोक व्यक्त करने आए रिश्तेदार और पड़ोसियों के चप्पलों का अंबार बाहर लगा था, जिसे किनारे किया जा रहा था. मैंने लपककर पिताजी की सैंडिल उठाई और सीने से लगा ली. जी चाहा ज़ोर से चिल्लाकर कहूं “पिताजी आप की सैंडल अब मेरे पास हैं. अब मैं आपको जाने नहीं दूँगी.” पर अब पिताजी नहीं हैं. वे सदा के लिए चले गए, कितनी बातों और यादों को हमारी झोली में डालकर.

कीर्ति शुक्ला

■■■

मास्टर कल्याणनाथ

यह 1970 के लगभग की बात है कि एक पाठशाला के अध्यापक "मास्टर कल्याणनाथ" अपने सब विद्यार्थियों में बहुत प्रिय थे. मास्टर कल्याणनाथ स्वभाव से बहुत सीधे-सादे और सरल इंसान थे.

1970 में सरकारी स्कूलों की इमारतें छोटी एवं खस्ता हालत में थी. जैसे बारिश में छत का टपकते रहना जब कभी तेज बारिश होती थी तब मास्टर जी सब बच्चों को अपनी कुर्सी के निकट बिठा लेते थे और शिक्षाप्रद कहानियां सुनाते थे. वह बारिश का दिन सबके लिए एक यादगार दिन बन जाता था. सब बच्चे पिछले दिन किए अच्छे कार्यों के बारे में मास्टर जी को जरूर बताते थे और मास्टर जी उनकी बातें ध्यान से सुनते थे. मास्टर जी हमेशा उनका मार्गदर्शन एवं मनोबल बढ़ाते और उनको अच्छे और सच्चे मार्ग पर चलने की शिक्षा देते थे.

जब कोई बच्चा पढ़ते समय खिड़की से बाहर देख रहा होता तो वह उस बच्चे को अक्सर यह कहते कि यह बड़ा होकर लेखक / कवि बनेगा. यह सुनकर सब बच्चे मुस्कुराते थे. मास्टर जी ने कभी भी किसी बच्चे पर गुस्सा नहीं किया. मास्टर जी किराये के घर में रहते थे और अपनी थोड़ी पगार में बहुत संतुष्ट थे.

मास्टर जी जब पाठशाला नहीं आते थे उस दिन सब बच्चों को मास्टर जी की कमी बहुत खलती थी. कुछ अच्छे और यादगार वर्ष बीतने के बाद सब बच्चे प्राइमरी स्कूल से हाई स्कूल और हाई स्कूल की शिक्षा प्राप्त कर एक दूसरे से बिछड़ गए, कोई उच्च शिक्षा के लिए विदेश चला गया तो कोई अपने पिता के कारोबार में अपना योगदान देने लगा. जिंदगी की भागा-दौड़ी में सब बच्चे एक दूसरे को लगभग भूल चुके थे. सब अपने लक्ष्य को पाने की होड़ में लग गए थे और उस समय एक-दूसरे से जुड़े रहने के लिए कोई माध्यम भी उपलब्ध नहीं था और समय के साथ सब मास्टर जी को भूल गए थे. समय का पहिया घूमता गया. इस बीच एक विद्यार्थी "सत्यदेव" जो विदेश चला गया था फिर जब वो भारत लौटा तब उसे बचपन के सब किस्से कहानियाँ एवं मास्टर जी की याद आने लगी. तब सत्यदेव को अपनी वह पाठशाला भी याद आई जिसमें वह पढ़ा करता था. तब वह पाठशाला को देखने गया जोकि हाई स्कूल की एक पक्की इमारत में बदल चुकी थी. सत्यदेव को पिछले सभी पल याद आने लगे और उसकी आंखें भर आई. उस समय सत्यदेव बस एक ही बात सोच रहा था कि मास्टर जी अब कहाँ पर होंगे और किस हाल में होंगे.

मास्टर जी की पूछताछ करने पर स्कूल वालों ने सत्यदेव को बताया कि 15 साल पहले मास्टर जी नौकरी से सेवानिवृत्त हो चुके थे और अब वो कहां पर हैं और क्या कर रहे हैं,

इसका उनको कोई ज्ञान नहीं है. सत्यदेव ने मन ही मन में निश्चय कर लिया था कि वो कैसे भी करके मास्टर जी को ढूंढ निकालेगा.

इधर-उधर से पूछताछ करने पर सत्यदेव को किसी ने बताया कि मास्टर जी सेवानिवृत्त होने के बाद किताबों की किसी लाइब्रेरी में काम कर रहे थे. सत्यदेव का मास्टर जी को खोजने का सफर शुरू हुआ और बहुत ढूंढने पर सत्यदेव को लाइब्रेरी भी मिल गई जिसमें मास्टर जी काम करते थे और उस लाइब्रेरी के मालिक ने सत्यदेव को बताया कि मास्टर जी उसके पास 7 साल पहले काम करते थे पर किसी वजह से वो अपने गाँव वापिस लौट गए थे. मास्टर जी की खोज एक बार फिर शुरू हो चुकी थी और उसी खोजबीन में उसको मास्टर जी के पुश्तैनी घर का पता चल गया और वह उसी पल में मास्टर जी की खोज में उनके पुश्तैनी घर की तरफ रवाना हो गया.

पहले रेल और फिर बस का सफर करने के बाद वह गाँव में पहुंचा. उस छोटे से गांव को देख कर सत्यदेव के मन में मास्टर जी से मिलने की उम्मीद बंध चुकी थी. इसी खोजबीन में सत्यदेव गांव की छोटी, बड़ी गलियों में मास्टर जी का नाम बता कर उनके बारे में पूछताछ करने लगा और उसी खोजबीन के तहत सत्यदेव गांव की छोटी सी पाठशाला में भी गया और वहाँ उसकी मुलाकात एक वृद्ध व्यक्ति से हुई. उन्होंने सत्यदेव से पूछा कि “कहीं तुम केदारी को तो नहीं खोज रहे जो मास्टरी करने शहर चला गया था” उस बूढ़े इंसान से यह बात सुन कर सत्यदेव को उम्मीद की एक किरण दिखाई देने लगी थी. उसने जल्दी से उस बूढ़े आदमी से कहा था “जी हां मैं उन्हीं की बात कर रहा हूँ.”

वृद्ध ने सत्यदेव को मास्टरजी के घर का पता दिया जो उसी गली के नुक्कड़ पर था. तब सत्यदेव ने धड़कते दिल से उस घर का दरवाज़ा खटखटाया था और एक अधेड़ सी दिखाई देने वाली महिला ने उस घर का दरवाज़ा खोला. उनसे हुई थोड़ी सी बातचीत के दौरान ही उन्होंने सत्यदेव को अपने घर के भीतर एक सोफे पर बिठाया. महिला ने सत्यदेव को बताया कि मास्टर जी उन्हें यह घर बेच कर वहां से चले गए थे. सत्यदेव के यह पूछने पर कि वो कहां गए होंगे के जवाब में महिला ने कहा था कि घर बेच कर शायद मास्टर जी ने अपनी दो बेटियों की शादी करवाई थी. यह सब सुनकर सत्यदेव का दिल भर आया था और वह मन ही मन में सोच रहा था कि पता नहीं मास्टर जी अब किस हाल में होंगे और कहां पर होंगे. अब उसको मास्टर जी के मिलने की कोई उम्मीद नज़र नहीं आ रही थी.

उसी मायूसी भरे पलों में वह गांव के बस स्टाप पर पहुंच गया तभी उसकी निगाहें पेड़ की छांव में बनी किताबों की एक दुकान पर गई. किताबों की दुकान पर एक छोटा सा बच्चा बैठा हुआ था. उस बच्चे ने सत्यदेव को जब दुकान पर आते देखा तो सत्यदेव से कहा “नमस्ते साहब आपको क्या चाहिए?” सत्यदेव ने कहा “ बेटा एक हिंदी का अखबार देना.” बच्चे ने हिंदी का अखबार सत्यदेव को दिया.

सत्यदेव ने उस बच्चे को 100 रुपए दिए, और जब तक वह बच्चा उसे बाकी पैसे वापिस देता, सत्यदेव पास ही खड़ी बस में जा बैठा, जो बस अब शहर की ओर रवाना होने के लिए लगभग तैयार थी. वह छोटा सा बच्चा बाकी बचे पैसे देने के लिये, उस चलती हुई बस के पीछे भागा, पर वह बस धूल उड़ाती बहुत तेज़ी से अपनी मंज़िल पर आगे बढ़ गई थी और उसी पल हाथों में पानी का एक मटका थामें हुए, एक वृद्ध से दिखाई देने वाले व्यक्ति, अपनी किताबों की दुकान पर आ पहुँचे, तब उस छोटे बच्चे ने उस वृद्ध व्यक्ति से कहा," मास्टर जी एक ग्राहक ने एक हिंदी की अखबार ली थी और उसने मुझे 100 रुपये दिये थे, पर जब तक मैं उनके पैसे उनको वापिस करता, वो बस में बैठ कर चले गये. उस वृद्ध ने माथे पर आये पसीने को पोंछा और कहा "कोई बात नहीं बेटे, वह जब भी वापिस आकर अपने पैसे मांगेंगे, हम उन्हें उनके पैसे वापिस लौटा देंगे"

यह बुजुर्ग और कोई नहीं मास्टर कल्याणनाथ ही थे, जो तपती धूप में एक वृक्ष के नीचे अपना डेरा डाले बैठे हुए थे. उन्होंने एक कपड़ा बाँध कर, उस छोटी सी दुकान के साथ, अपने रहने की व्यवस्था भी कर रखी थी. वह बच्चा, उनका विद्यार्थी था और वो उस बच्चे को अपने खाली समय में पढ़ा दिया करते थे.

मास्टरजी ने अपने शिक्षक होने का धर्म पूरी ईमानदारी और सच्चाई के साथ निभाया था, पर दूसरी तरफ उनका वह छोटा सा नन्हा सा विद्यार्थी भी, अब सत्यदेव बन कर, अपना धर्म खूब निभा रहा था. जैसे ईश्वर ने, मास्टर कल्याणनाथ के सब विद्यार्थियों की तरफ से, उस छोटे नन्हें से फरिश्ते को मास्टर कल्याणनाथ जी की मदद करने के लिए भेजा था और वह बच्चा अपने कार्य को बहुत अच्छी तरह अंजाम दे रहा था और वह नन्हा सा विद्यार्थी एक सेनापति की भांति मास्टर कल्याणनाथ की हर संभव मदद करने के लिए तैयार सा खड़ा था. ईश्वर के आशीष से, छोटे बच्चों के भविष्य निर्माता, मास्टर कल्याणनाथ जैसे सच्चे और ईमानदार शिक्षक को, कभी भी किसी की मदद की जरूरत नहीं पड़ सकती, उन जैसे सच्चे शिक्षकों पर, ईश्वर की कृपा सदा बनी रहती है और कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी, उनके जैसे उजले चरित्र वाले इंसान का मनोबल कभी नहीं टूटता.

न जाने कितने ही मास्टर कल्याणनाथ जैसे सच्चे और ईमानदार शिक्षक, बच्चों को ईमानदारी और सच्चाई का पाठ पढ़ाते-पढ़ाते, खुद पैसों के अभाव में, जीवन की कठिनाईयों को झेलते वक्त की अमिट धुंध में समा जाते है. अपने शिक्षकों का सदा सम्मान कीजिए, क्योंकि आपके शिक्षक आपको जीवन से जूझना सिखाते है और आपके जीवन को नई दिशा देते हैं.

सुमित गर्ग

■■■

सच्चा सौदा

लखनऊ में उत्तराखंड महोत्सव अपने चरम पर था, प्रत्येक वर्ष शीत ऋतु के प्रारम्भ में गोमती नदी के किनारे लगने वाला यह मेला उत्तराखंड के कुमाऊँ और गढ़वाल मण्डल की एक सुनहरी छवि प्रस्तुत करता है. महोत्सव के दौरान प्रत्येक संध्या को आयोजित होने वाले सांस्कृतिक कार्यक्रमों में प्रस्तुत होने वाले लोकनाट्य, नृत्य एवं पहाड़ी गीत देखने वालों को उत्तराखंड की वादियों में खींच ले जाते हैं. मेले में लगने वाली पहाड़ी परिधानों की दुकानें, विशेषकर ऊनी वस्त्र जैसे कोट, उत्तराखंडी सदरियाँ, टोपियाँ, साड़ियाँ एवं बच्चों के परिधान ग्राहकों को अनायास ही मोह कर अपनी ओर खींच लेते हैं.

हमारे कार्यालय के विभागाध्यक्ष पंत जी, जो उत्तराखंड के कुमाऊँ क्षेत्र, हल्द्वानी के ही रहने वाले हैं, जो दो ही दिन पहले सपरिवार उत्तराखंड महोत्सव घूम कर आए थे और तभी से कार्यालय में कई बार उस महोत्सव की भूरि-भूरि प्रशंसा कर चुके थे. पंत जी महोत्सव से दो कोट भी लेकर आए थे जो सचमुच बहुत सुंदर थे. कई बार उनके मुख से उस महोत्सव का वृत्तान्त सुनकर अब मेरी एवं कार्यालय के अन्य साथियों की भी महोत्सव घूमने की अभिलाषा बलवती हो चुकी थी. हम लोगों ने अपने विभागाध्यक्ष पंत जी की अगुवाई में, अन्य साथियों माहेश्वरी जी, हमारे सबसे वरिष्ठ साथी प्रसाद जी के साथ शाम को महोत्सव जाने की योजना बनाई.

शाम को हम अपना काम समाप्त करके एक साथ महोत्सव के लिए निकल गए. महोत्सव की चहल पहल काफी दूर से ही दिखाई दे रही थी. गोमती नदी से उस महोत्सव का प्रकाश पुंज एक प्रतिबिंब के रूप में दृष्टिगोचर

हो रहा था. उस मेले की रौनक ने हमें दूर से ही आकर्षित करना आरंभ कर दिया था. महोत्सव की ओर जाने और वहाँ से वापस लौटते हुए लोगों को देखकर मन रोमांचित हो रहा था, विशेष कर वापस लौटते हुए बच्चे जिनके हाथों में गुब्बारे, सीटियाँ तथा नाना प्रकार के खिलौने और उनके चेहरों की चमक, जिसे शायद इस महोत्सव की झलक ने और तरोताजा बना दिया था. टैक्सी से उतर कर कुछ दूर पैदल चलते हुए हमने उस मैदान में प्रवेश किया जहाँ महोत्सव सजा हुआ था. महोत्सव के मुख्य द्वार को बहुत ही खूबसूरती से सजाया गया था. उस पर की गई पहाड़ी चित्रकारी जगमगाती रोशनी में एक अलग ही छटा बिखेर रही थी. मुख्य द्वार से प्रविष्ट होने के पश्चात बायीं तरफ सांस्कृतिक कार्यक्रमों हेतु एक भव्य पंडाल सजाया गया था. जहाँ तमाम कलाकारों द्वारा मोहक प्रस्तुतियां दी जा रहीं थीं. मुख्य द्वार के दायीं तरफ तमाम दुकानें सजी हुई थीं और सबसे अंत में खाने-पीने की व्यवस्था थी.

लोगों का मुख्य आकर्षण मेले में सजी हुई दुकानों की तरफ दिखाई दे रहा था. पहाड़ी अनाजों, पहाड़ी अचार, कलाकृतियाँ, बर्तन, मेवे, बच्चों के खिलौने एवं विभिन्न प्रकार के परिधान सभी प्रकार की दुकानों में लोग अपनी रुचियों के अनुसार भीड़ लगाए हुए थे. हम लोगों की निगाह कोट वाले की दुकान को खोज रही थी. पंत जी के कोट देखकर हमारा

प्रसाद जी से चुटकी लेते हुए पूछा कि आपने कोट क्यों नहीं लिया, तो उन्होंने अपनी हाजिर जवाबी दिखाते एवं मुस्कराते हुए कहा कि "*बादाम खाने वालों को कोट पहनने की आवश्यकता नहीं पड़ती.*"

मन जो ललचा उठा था. अंततः हमनें कोट वाले की दुकान खोज निकाली और कोट तथा सदरियों पर अपनी निगाहें दौड़ाने लगे. हम लोग अपनी पसंद के कोट पहन-पहन कर देख रहे थे तथा उनकी नाप, मूल्य एवं सुंदरता का आंकलन कर रहे थे. अंततः मैंने, पंत जी ने और माहेश्वरी जी ने एक-एक कोट पसंद किया और मोल-भाव करके उनका दाम चुका दिया. इस बीच हमारे प्रसाद जी जिनको कोट देखने या खरीदने में विशेष रुचि नहीं थी, दिखाई नहीं दे रहे थे, हम लोगों ने कोट खरीदने के बाद प्रसाद जी को ढूँढना आरंभ किया, थोड़ी ही दूर पर प्रसाद जी एक मेवे की दुकान पर दिख गए जो बड़ी ही तल्लीनता के साथ मेवे के विक्रेता से मोल-भाव कर रहे थे. हम सब भी वहाँ पंहुच गए और प्रसाद जी से चुटकी लेते हुए पूछा कि आपने कोट क्यों नहीं लिया, तो उन्होंने अपनी हाजिर जवाबी दिखाते एवं मुस्कराते हुए कहा कि "*बादाम खाने वालों को कोट पहनने की आवश्यकता नहीं पड़ती.*" हम लोगों ने भी थोड़ी बहुत मात्रा में काजू-बादाम किशमिश इत्यादि खरीदे किन्तु हमारे प्रसाद

जी ने काफी अधिक मात्रा में मेवे खरीदे. प्रसाद जी के घर में भी अधिक लोग नहीं थे, अतः हम सब सोच रहे थे की वे इतने मेवे का क्या करेंगे और बीच-बीच में उनसे चुटकी भी ले रहे थे किन्तु प्रसाद जी केवल मुस्कुरा रहे थे और कोई जवाब नहीं दे रहे थे. ऐसे ही हंसी ठिठोली करते और मेले में ही कुछ खा-पीकर हम महोत्सव से वापस आ गए, किन्तु प्रसाद जी के मेवे का मुद्दा अभी तक जीवित था.

अगले दिन हम अपने कार्यालय में अपने-अपने नए कोट पहन कर आए और सबसे उनकी प्रशंसा सुन कर फूले नहीं समा रहे थे किन्तु प्रसाद जी अपने कक्ष में इन सब चर्चाओं से परे शांत बैठे थे. वे अपना मेवे का झोला भी साथ लाए थे जो उनकी मेज के नीचे रखा हुआ था. हम लोगों ने पूछा कि "प्रसाद जी क्या हम सबको भी खिलाएँगे" तो वे मुस्कुराते हुए बोले "हाँ हाँ ! क्यों नहीं?" और अपने झोले में से चार-चार बादाम निकाल कर हमारे हाथों में रख दिये. तत्पश्चात् हम सब अपना अपना काम निपटाने लगे. दोपहर को भोजनावकाश के पश्चात् अक्सर हम सभी लोग थोड़ा टहल लेना पसंद करते हैं किन्तु आज प्रसाद जी कुछ जल्दी दिखा रहे थे, जो आम दिनों में टहलने की वकालत किया करते थे. प्रसाद जी हमको बाहर ही छोड़ कर अपने कक्ष की ओर चले गए और बाकी लोग टहलने में मग्न हो गए. कुछ देर के पश्चात् प्रसाद जी अपने मेवे वाले झोले के साथ इधर-उधर देखते हुए बड़ी ही शांति से पुनः बाहर निकलते हुए दिखाई दिये. उनको ऐसे चुपचाप निकलते हुए देख मेरे मन की शंकाए और कौतुहल अंगड़ाइयाँ लेने लगीं. मैं भी चुपचाप दबे पाँव उनके पीछे चल दिया, प्रसाद जी अप्रत्याशित रूप से काफी तेज चल रहे थे और कुछ दूर जा कर पुलिस कॉलोनी की तरफ मुड़ गए, जहाँ कुछ ही दूरी पर झुग्गिया बनी हुई हैं और अक्सर वहाँ कुछ बच्चे ठंड की दोपहर अथवा शाम को दिये की रोशनी में पढ़ते हुए दिख जाते थे. प्रसाद जी ने ठीक वहीं पर पहुंच कर उन बच्चों को आवाज दी और पूरा झोला उनकी ओर बढ़ा दिया, फिर स्नेह से उनके सिर पर अपना हाथ फेरते और अपना आशीष देते हुए वापस लौट पड़े. मैं पीछे हट कर एक पान की दुकान की ओट में आ गया ताकि वे मुझे न देख सकें क्योंकि मैं उनके आत्मसम्मान को ठेस नहीं पहुचाना चाहता था. अब मेरा कौतुहल शर्मिंदगी में रूपांतरित हो गया था, उनके प्रति हमारी परिहास की भावना गहरे सम्मान में बदल चुकी थी, आज प्रसाद जी का यह रूप देख कर हमें स्वयं को दर्पण से मुंह चुराने की इच्छा हो रही थी. उस महोत्सव में हम सब ने कुछ न कुछ सौदा किया था किन्तु जो सौदा प्रसाद जी ने किया था असल में वही सच्चा सौदा था.

मोहित मिश्रा

■■■

अंतिम सीख

दिनकर सर अपने विद्यार्थियों के बीच काफी लोकप्रिय एक सेवानिवृत शिक्षक थे. 3 दिन पूर्व ही शहर के एक अस्पताल में इलाज के चलते उनका देहावसान हो गया था. उनको श्रद्धांजलि देने हेतु आज प्रार्थना सभा आयोजित की गई थी. समय हो चला था इसलिए लोग एकत्रित हो रहे थे. ठीक समय पर सभा शुरू हुई. एक-एक कर उनके विद्यार्थियों ने और कुछ लोगों ने उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डाला. अभी सभा चल ही रही थी कि एक अनजान व्यक्ति ने प्रवेश किया और यह कहते हुए सबको चौंका दिया कि अस्पताल में दिनकर सर के बेड पर तकिये के नीचे यह लिफाफा मिला, जिस पर लिखा है कि इसे मेरी प्रार्थना सभा में ही खोला जाए. दिनकर सर की इच्छा के अनुरूप एक व्यक्ति ने लिफाफा खोला. लिफाफे में एक पत्र प्राप्त हुआ. माइक से उस पत्र का वाचन शुरू किया-

प्रिय आत्मीय बंधुओ,

जब यह पत्र पढ़ा जा रहा होगा तब तक मैं संसार से विदा ले चुका होऊँगा. मेरा यह पत्र मुख्यतः शिक्षकों से अपने जीवन के अनुभव बांटने के लिए है. अगर वह इससे कुछ प्रेरणा ले सकें तो मैं अपने जीवन को धन्य समझूँगा. बात 1975 की है. एक शिक्षक के रूप में कार्य करते हुए मुझे 20 वर्ष हो चुके थे. इसी दौरान एक बार मैं अपनी धार्मिक यात्रा पर वृंदावन गया हुआ था. वहां एक संत रामसुखदास के सत्संग में जाना हुआ. प्रवचन समाप्त होने पर मैंने अपनी जिज्ञासा उनके सामने रखी-

“स्वामीजी, मुझे ईश्वर में बहुत आस्था है परंतु मैं नियमित पूजा पाठ, कर्मकांड आदि नहीं कर पाता हूँ और इसमें मुझे रुचि भी नहीं है, कृपया बताएं मैं ईश्वर की कृपा कैसे प्राप्त करूँ.” स्वामी जी थोड़ी देर चुप रहे. कुछ देर सोच कर उन्होंने कहा-

“देखिए! भक्ति का अर्थ होता है सेवा. अगर हम इस दुनिया को ईश्वर का ही स्वरूप मानें और सभी के प्रति सद्भावना रखते हुए सेवा भाव से अच्छे कर्म करें तो यह भी ईश्वर की ही भक्ति हुई.”

कुछ देर मौन रहकर स्वामी जी ने फिर प्रश्न किया- “अच्छा यह बताओ कि तुम क्या करते हो?”

“जी मैं एक शिक्षक हूँ.”

“तुम्हें अपना यह कार्य कैसा लगता है?”

“बहुत अच्छा लगता है. बच्चों के बीच रहना और उन्हें पढ़ाना, इसमें मुझे आनंद प्राप्त होता है.”

“तो अपने इसी शिक्षक कर्म को ईश्वर की भक्ति बना लो. देखा जाए तो शिक्षक का विद्यार्थी के प्रति, व्यापारी का ग्राहक के प्रति, डॉक्टर का मरीज के प्रति, नेता का जनता के प्रति यदि सेवा का भाव मन में जागृत हो जाए तो यह यथार्थ भक्ति हुई.”

दो-तीन दिन बाद हम अपने गांव लौट आए और एक बार फिर मैं अपने स्कूल में था. स्वामी जी की बातों से तो अब बच्चों को पढ़ाने में मुझे और भी आनंद आने लगा, हालांकि जल्द ही मुझे एहसास हो गया कि ईश्वर के प्रतीक चिह्न मूर्तियों की पूजा करना तो फिर भी आसान है. कभी भी स्नान करा दो, कुछ भी भोग लगा दो. स्तुति करो तो ठीक, न करो तो ठीक. उसकी तरफ से कोई प्रतिक्रिया नहीं, कोई नखरे नहीं. पर यह बच्चे. . . उफ्फ. इनकी चंचलता, शरारतें, जिज्ञासाओं से भरा मन. कितनी कठिन है इनकी भक्ति.

समय इसी तरह निकल रहा था कि एक दिन सूचना मिली कि विजय का भयंकर एक्सीडेंट हो गया है और उसके दोनों पैर फ्रैक्चर हो गए हैं. सुनकर दुख तो हुआ परंतु हम सब के लिए यह राहत की बात थी कि वह महीने दो महीने स्कूल नहीं आएगा. इस घटना को

“देखिए! भक्ति का अर्थ होता है सेवा. अगर हम इस दुनिया को ईश्वर का ही स्वरूप मानें और सभी के प्रति सद्भावना रखते हुए सेवा भाव से अच्छे कर्म करें तो यह भी ईश्वर की ही भक्ति हुई”

अभी सप्ताह भर ही हुआ था कि मुझे महसूस हुआ कि शायद मेरे विचार और भाव गलत दिशा में जा रहे हैं. हकीकत तो यह थी कि मेरी भक्ति एक कठिन परीक्षा के दौर से गुजर रही थी. विजय जैसे शरारती प्रवृत्ति के बच्चों में प्रेम और संवेदनाओं का अभाव होता है. लेकिन संवेदनाओं को तो संवेदनाएं देकर ही जागृत किया जा सकता था. अतः मैंने स्कूल समाप्त होने के बाद विजय को उसके ही घर पर जाकर पढ़ाने का निर्णय लिया.

मुझे अपने घर देखकर विजय चौंक गया. मैंने उसे लेटे रहने का इशारा किया और एक्सीडेंट के बारे में सामान्य जानकारी प्राप्त की. परीक्षा नज़दीक होने से उसके लिए समय बहुत महत्वपूर्ण था. अतः उसे पढ़ाने का सिलसिला शुरू हुआ. विजय को मुझसे संवेदनापूर्ण व्यवहार की उम्मीद नहीं थी इसलिए उसे कहीं न कहीं अपराध बोध हो रहा था. धीरे-धीरे उसे पढ़ने में मजा आने लगा. मैंने महसूस किया कि वह पढ़ाई में बहुत अच्छा था. उसकी याददाश्त भी बहुत

तेज थी. मैं उसे गणित, विज्ञान और अंग्रेजी पढ़ाता और बाकी विषयों के नोट्स अपने साथी शिक्षकों से लेकर उसे देता. आठवीं बोर्ड की परीक्षा थी और परीक्षा के ठीक पहले वह स्वस्थ हो गया था. उसने परीक्षा अच्छे से दी और वह 73% अंकों से पास हो गया.

गरमी की छुट्टियों के तुरंत बाद मेरा ट्रांसफर अन्य जगह हो गया. समय धीरे-धीरे निकलता गया. मेरी ईश्वर भक्ति जारी रही. कई विद्यार्थी मेरे जीवन में आए. उनकी उच्च प्रतिभा में मैंने ईश्वर के दिव्य दर्शन किए. . . . . और एक दिन मेरी सेवानिवृत्ति होते ही इस आनंदमय यात्रा पर विराम लगा. सेवा निवृत्ति के लगभग 10 वर्ष बाद और इस पत्र को लिखने के 8 दिन पहले अचानक मेरा ब्लड प्रेशर बहुत बढ़ गया और मैं बेहोश हो गया. जब होश आया तो मैंने स्वयं को शहर के बड़े अस्पताल के आईसीयू वार्ड में एक बिस्तर पर पाया.

"मुझे क्या हुआ है?" एक नर्स से मैंने पूछा. "कुछ ही देर में डॉक्टर राउंड पर आने वाले हैं, वो ही बता पाएंगे" कहते हुए नर्स चली गई. करीब 15 मिनट बाद डॉक्टर एक नर्स के साथ मेरे बेड पर आए. डॉक्टर ने मेरी फाइल ली, कुछ पढ़ा और मुझे गौर से देखकर उसने आश्चर्यचकित होकर कहा- "सर. . . आप यहां. . ?"

"हां! पर क्या आप मुझे पहचानते हैं? मैंने डॉक्टर से पूछा. "हां! पर शायद आपने मुझे नहीं पहचाना." "बिल्कुल सही है मैंने आपको नहीं पहचाना."

"मैं विजय. . . . . वही विजय जिसे आपने आठवीं कक्षा में पढ़ाया था" डॉक्टर ने चरण स्पर्श करते हुए कहा.

"अरे हां. तुम तो विजय हो., परंतु इस अस्पताल में क्या कर रहे हो?"

"सर मैं यहां पर हार्ट सर्जन हूँ और मेरी किस्मत बदलने वाले कोई और नहीं बल्कि आप हैं. कुसंगति में पड़कर मेरा भविष्य तो अंधकारमय हो चला था, परंतु आपके प्रेम और संवेदनाओं ने मेरा जीवन ही बदल दिया. मुझे आपसे ही आत्मविश्वास मिला. मेरी पढ़ने में रुचि बढ़ गई और मैं यहां तक आ पहुंचा."

"अरे वाह. . . . तुमने तो मुझे खुश कर दिया."

विजय मेरी फाइल देख रहा था और अचानक उसका चेहरा गंभीर हो गया. "मुझे क्या हुआ है विजय ?"

"कुछ नहीं सर, आप जल्दी ही ठीक हो जाएंगे" कहते हुए वह चला गया.

मैं लेटे-लेटे उन दिनों की स्मृतियों में खोया हुआ था कि मुझे नींद में समझकर दो नर्स आपस में बातें करने लगी "पहली बार विजय सर को रोते हुए देखा है, आखिर ऐसी भी क्या बात है?"

“यह अंकल, विजय सर के टीचर हैं. इन्हें सिवियर हार्ट अटैक हुआ है. कल शाम 6 बजे तक रिकवर कर लिया तो ठीक वरना बचना मुश्किल है.”

अपनी स्थिति का यथार्थ मालूम होने पर भी मैं चिंतित नहीं था. रात में मैंने महसूस किया कि कोई मेरे पैर पकड़कर सुबक रहा था. देखा तो वह विजय था. मैंने उसे अपने पास बुलाया “तू अपना कर्तव्य कर, डॉक्टर के रूप में अपना फर्ज निभा. पर सच तो यह है आज तुझसे मिलने के बाद तुझे इतने बड़े हॉस्पिटल का डॉक्टर बना देखकर मुझे मेरा रिपोर्ट कार्ड मिल गया. अगर भक्ति की परिणति परम शांति के रूप में होती है तो अब मैं पूर्णतया संतुष्ट हूँ. एक शिक्षक के रूप में मेरी भक्ति को ईश्वर ने स्वीकार कर लिया. अब मुझे कुछ नहीं चाहिए. एक तृप्तिदायक और आनंददायक मृत्यु मेरा इंतजार कर रही है. मैं चला भी गया तो मेरे जाने का शोक मत करना. . . . एक डॉक्टर के रूप में मरीजों की सेवा करना.”

मुझे कब नींद आ गई पता नहीं. सुबह उठकर खिड़की से मैंने अंतिम बार सूर्य के दर्शन किए. शायद सूर्यास्त न देख पाऊँ आज 6 बजने में लगभग 3 घंटे है जब मैंने यह पत्र लिखना शुरू किया, मेरा यह पत्र इस बात की गवाही देने के लिए है कि सच्चे भाव से की गई सेवा कभी व्यर्थ नहीं जाती.

मेरा शिक्षक साथियों से यही कहना है कि अपना महत्व समझो. . . . . यह डॉक्टर, इंजीनियर, कलेक्टर,. . . . मंत्री, यह सब तुमने ही तो बनाए हैं. तुम्हीं तो शिल्पकार हो इन सबके. . . तुम अपने गौरव को पहचानो. . . . . उत्तरदायित्व को समझो. . . राष्ट्र के निर्माता हो तुम. . . कोई मामूली इंसान नहीं हो तुम. वो देखो छुट्टियां खत्म होने वाली हैं. . . . . वो देखो स्कूल का गेट खुलने वाला है. . शिक्षा के पवित्र स्थान को बुहार लिया या नहीं तुमने. . . पूजा की थाल सजाई कि नहीं अब तक तुम्हारा ईश्वर, वाहेगुरु बस प्रवेश करने ही वाला है.

अच्छा. . अब. . . अलविदा. . . . . अलविदा. . . अलविदा

पत्र का वाचन समाप्त हुआ. बहुत देर तक सभी खामोश रहे. अचानक सभी को ऐसा महसूस हुआ कि जैसे “दिनकर सर” कहीं गए नहीं हैं. . . यहीं हैं. . . जीवित हैं. . हम सबके भीतर एक प्रेरणा बनकर.

रजनी शर्मा

■■■

मूंछें

प्रो. कमल अरोड़ा को उनकी ही एक साथी लैक्चरर का सुबह-सुबह फोन आता है. वे फोन उठाते हैं "कौन?"

"अरोड़ा साहब, मैं मिसेज डोंगरा बोल रही हूँ." वे अपनी सहकर्मी लैक्चरर की आवाज पहचान जाते हैं.

"क्या बात है मिसेज डोंगरा? आज सुबह-सुबह इस नाचीज़ को कैसे याद किया?" प्रोफेसर अरोड़ा ने पूछा.

"अरोड़ा साहब मेरी बात ध्यान से सुनना और घबराना नहीं." मिसेज डोंगरा की आवाज में घबराहट और कमज़ोरी महसूस हुई तो प्रो. अरोड़ा भी घबरा गये. "क्या हुआ? क्या हुआ? जल्दी बताओ. साफ-साफ बताओ? क्या हुआ?"

"अऽऽ. . . मेजर वर्मा नहीं रहे." बड़ी मुश्किल से मिसेज डोंगरा बोली. "क्या? कौन. मेजर वर्मा? क्या कह रही है आप ! अभी कल रात को ही तो हमने मिलकर लोहड़ी का त्यौहार मनाया है." प्रो. अरोड़ा अविश्वासपूर्ण स्वर में बोले. मिसेज डोंगरा कहने लगीं "मौत के आगे किसका बस चलता है. मुझे भी मिसेज इन्दु का फोन अभी-अभी आया है."

"उनकी मौत कैसे हुई?" प्रोफेसर साहब ने फिर से सवाल किया.

"मुझे इतना नहीं पता है. मैं अपने हस्बैंड के साथ मिसेज वर्मा के घर जा रही हूँ, वहीं पर कुछ पता चलेगा. मुझे लगता है कि उन्हें हार्ट अटैक आया होगा", मिसेज डोंगरा बोली.

"ठीक है. . मैं भी अभी पहुंचता हूँ." इतना कहकर प्रोफेसर साहब ने फोन रख दिया. उन्हें मेजर साहब के साथ कल बिताई पूरी शाम याद आ रही थी. मेजर साहब अभी कल ही तो कश्मीर से छुट्टी पर आये थे और मिसेज वर्मा उन्हें सीधे कॉलेज के हॉस्टल में लोहड़ी मनाने के लिए ले आयीं थीं.

कारगिल के युद्ध के दौरान मेजर साहब कारगिल बार्डर पर तैनात थे और उनकी रेजीमेंट ने दुश्मनों के छक्के छुड़ा दिए थे. वे कल लोहड़ी वाले दिन बता रहे थे कि उन्होंने कैसे दुश्मनों को अपनी सरजमीं से खदेड़ा था. कल मेजर वर्मा बता रहे थे कि सामने से गोलियां चलने पर मैंने जवानों को सामने बढ़ने का आदेश दिया था लेकिन दुश्मन ने अचानक बायें और दायें से हमला बोल दिया. मैंने जवानों को तुरंत आदेश दिया कि सामने से कम और बायें दायें से ज्यादा

मुकाबला करो. सामने सिर्फ दो टैंक थे और बायें-दायें हमने अपने तीन-तीन टैंक बढ़ा दिए. दुश्मन को यह उम्मीद नहीं थी कि हमारे जवान इतनी फुर्ती से अपना निशाना बदलेंगे, देखते-देखते दुश्मनों के सारे टैंक उड़ा दिए गए और मेरी रेजीमेंट के जवानों ने 90 दुश्मनों को मार गिराया. प्रोफेसर साहब ने उन्हें कहा "अगर आपने वक्त की नजाकत को समझते हुए तुरंत निर्णय न लिया होता तो हमारे कितने जवान मारे जाते, उनकी औरतें विधवा हो जातीं और बच्चे अनाथ हो जाते. आपने कश्मीर ही नहीं, अपनी मूंछों की आन भी रख ली."

प्रोफेसर साहब की बात सुनकर मेजर वर्मा अपनी मूंछों पर ताव देते हुए बोले थे- "भाई साहब, आज मैं भी आपके बीच में नहीं होता." मेजर साहब की बात सुनकर मिसेज़ वर्मा की आंखें नम हो गई थी. प्रो. अरोड़ा ने कहा था "आपने अपने देश की रक्षा के लिए एक बार तो जान की बाजी ही लगा दी थी. आप सच में शेर हैं, घाटी के शेर. मैं आपको अब कभी मेजर वर्मा के नाम से संबोधित नहीं करूंगा मैं अब आपको "घाटी का शेर" के नाम से संबोधित करूंगा."

कल मेजर साहब से हुई मुलाकात एवं बातों को याद करते-करते प्रो. साहब अपने स्कूटर से मिसेज वर्मा के घर पहुंच गए. घर में मातम मचा हुआ था. हर कोई दहाड़-दहाड़ कर रो रहा था. मिसेज वर्मा की मां और मेजर वर्मा की मां बार-बार अपनी छाती पीट रही थीं और कह रही थी- "हमारे बेटे को किसी की नज़र लग गई. सभी कहते थे, इस खानदान में 6 फुट का कोई जवान नहीं है. मेरा बेटा छः फुट का था. . वही नहीं रहा. . न जाने किस की हाय उसको खा गई. मिसेज वर्मा बेहोश पड़ी थी और उनकी 12 व 10 साल की दोनों बेटियां भी तड़प-तड़प कर रो रही थीं. उनका 4 साल का बेटा शंटी अपनी बहनों को रोता देखकर बीच-बीच में रो पड़ता था. प्रोफेसर साहब को किसी आदमी ने बताया कि कल रात को कॉलेज में लोहड़ी मनाने के बाद मेजर साहब परिवार सहित एक पार्टी में गए थे और रात को 12 बजे लौटे थे. दो बजे उनके सीने में दर्द हुआ, उन्होंने मिसेज वर्मा को उठाया, मिसेज वर्मा ने डॉक्टर को फोन किया. डॉक्टर के आने से पहले ही मेजर साहब भगवान के पास जा चुके थे.

सभी लोग बैठे हुए बात कर रहे थे और मेजर साहब की बहादुरी, दरियादिली एवं बद्धिमानी के किस्से सुना रहे थे. एक व्यक्ति ने आकर बताया कि बॉडी पोस्टमार्टम के बाद आ चुकी है. ब्लड क्लॉट के कारण उनका हार्ट अटैक हुआ था. सभी मेजर साहब के अंतिम दर्शन करने के लिए उठ गये. घर के सभी लोग रो रहे थे, मेहमानों की आंखें नम थीं, घर के पीछे से एक बारात निकल रही थी और बैंड-बाजा बज रहा था. मिसेज वर्मा का चार साल का

मासूम बेटा शंटी रोते-रोते बैंड की धुन पर नाचने लगा. उसे शायद यह नहीं पता कि वह अनाथ हो चुका था. वह आदमी जो उसके घर छः माह में एक बार आता था, उसके साथ खेलता था, उसे प्यार करता था तो चार साल के शंटी को उसकी मूंछें चुभा करती थीं. शंटी मिसेज वर्मा को शिकायत करता था - "मम्मी मुझे इस आदमी की मूंछें चुभती है, इनसे कहो, मुझे प्यार न किया करें" मिसेज वर्मा कहती थीं "शंटी! बेटा यह तेरे पापा हैं." शंटी कहता था - "मुझे नहीं पता कौन हैं, बस इन्हें कह दो मुझे प्यार न करें, मुझे इनकी मूंछें चुभती है."

सभी लोग शमशान घाट पर पहुंचे. शंटी ने बड़े-बूढों के निर्देशों का, पालन करते हुए बिना उन सबका अर्थ समझे हुए अपने पिता की चिता को आग दी. चिता पूरी जल जाने के बाद सभी लोग जाने लगे, शमशान घाट के गेट पर चार साल का मासूम शंटी छोटी सी पगड़ी पहने हुए हाथ जोड़कर खड़ा था और सभी आगन्तुकों को विदा कर रहा था. किंतु वह यह नहीं जानता था कि उसे अब वे मूंछें कभी नहीं चुभेगी, क्योंकि उसे मूंछें चुभाने वाला तो इस दुनिया से जा चुका है. . .

कंवर भान चावला

■■■

सौदा

नियुक्ति-पत्र मिलते ही मेरी खुशी का ठिकाना न रहा. ऐसा लगा जैसे सारे जहां की खुशियों मेरे हाथ में आ गई हो. सात-आठ पंक्तियों का पत्र पढ़ते-पढ़ते सात आठ जन्मों तक की योजनाएँ बना डाली, पत्र जब माँ के हाथ में रखा तो वह इतनी खुश हुई जैसे नौकरी मुझे नहीं उन्हें मिल गई हो. खुशी से नम आंखे लिए उन्होंने मुझे सीने से लगा लिया. जैसे-जैसे ज्वाइन करने के दिन नज़दीक आने लगे, दूर भेजने की बेचैनी से उनका दिल धड़कने लगा. "माँ, वहाँ अच्छा घर मिलते ही तुम्हें जल्द ही अपने साथ ले चलूँगा मैंने उन्हें दिलासा दिया. मुझसे छिपाकर आंसू पोछते हुए वह बोली "नहीं रे, मैं यहा चंद्रपुर का घर छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगी, यहाँ मुझे कोई तकलीफ भी तो नहीं हैं. बहुत सारी यादों के साथ में यही रहूँगी."

उस समय मां से इस संबंध में ज्यादा बातें करना मैंने उचित नहीं समझा पर यह निश्चय कर लिया कि नौकरी ज्वाइन करते ही अच्छा सा घर किराए पर लूँगा. उसके बाद मां को अपने साथ ले चलूँगा. जिस गाँव में पैदा होकर मैं इतना बड़ा हुआ, वहां की एक-एक गलियों से इतना मोह था कि उसे छोड़ने का तो मेरा भी मन नहीं था पर नौकरी के लिए गाँव छोड़ना मजबूरी थी. दस दिन तैयारी में कैसे निकल गए पता ही नहीं चला. मुझे अपने से ज्यादा मां की चिंता थी कि दवाइयां, गेहूं पिसाना, उनकी जरूरत का सामान इकट्ठा करना कौन करेगा? ढेर सारे निर्देश, चेतावनी एवं सीख के साथ रात की ट्रेन से चलकर सुबह-सुबह में इलाहाबाद पहुँच गया. रिटायरिंग रूम में तैयार होकर, ईश्वर का नाम लेकर मैंने बैंक जॉईन कर लिया. नई जगह, नए लोगों से परिचय, नौकरी का पहला दिन, सब मिलाकर नया अनुभव था.

जल्दी ही मुझे बैंक के साथियों की मदद से एक अच्छा मकान किराए पर मिल गया. किराया भी ज्यादा नहीं था. मकान मालिक शर्मा विदेश में रहते थे. उन्हें किराए का लालच नहीं था, उन्हें तो मकान की देखरेख करने वाला कोई शरीफ व्यक्ति चाहिए था. मैं उन्हें पसंद आ गया. रविवार को जब छुट्टी मिलती, पूरा दिन मैं घर को व्यवस्थित करने एवं उसकी सफाई में निकाल देता. आस पास की दुकानें, लोग एवं स्थान से मैं जल्दी ही परिचित हो गया. डॉ शर्मा की इलाहाबाद में साख थी. चूंकि मैं उनके मकान में रहता था इसलिए लोग मुझे भी इज्ज़त की दृष्टि से देखने लगे. इधर मैं सारी जानकारी मां को

देता रहा किंतु माँ गाँव का घर छोड़ने को बिलकुल तैयार न थी.

नई नौकरी में शुरू में ज्यादा छुट्टी भी नहीं मिली. चार महीने कब निकल गए पता ही नहीं चला. इस बीच में सिर्फ दो दिन के लिए ही गाँव जा पाया. एक दिन मेरे मित्र गौरव का गाँव से फोन आया कि माँ काफी बीमार है, तुम शीघ्र ही गाँव आ जाओ. किसी तरह ट्रेन में ठूंसकर मैं सुबह गाँव पहुँच गया. वहाँ डॉक्टर से मिलने पर पता चला कि माँ के पेट में एक बड़ी सी गांठ है जिसकी वजह से भयंकर दर्द होता है. ऑपरेशन करके उसे निकालना पड़ेगा जिसमें लगभग दो लाख रुपये खर्च होंगे. ऑपरेशन जल्द कराना पड़ेगा. दो लाख रुपए सुनकर मेरे तो होश ही उड़ गए. इतनी जल्दी यह रकम मैं कैसे जुटा पाऊंगा?

दूसरे दिन मैं गौरव के साथ गाँव में परेशान घूम रहा था कि यह रकम कैसे जुटाई जाए? जो भी माँ के बारे में सुनता अफ़सोस जाहिर करता. सब एक ही सलाह दे रहे थे कि जल्दी ही ऑपरेशन करा लो. जिस गाँव को मैं अपना सगा समझता था वहां किसी ने यह तक नहीं पूछा कि इतनी बड़ी रकम कहां से लाओगे? जबकि मेरी आर्थिक स्थिति सब जानते थे. तभी मेरी मुलाक़ात गाँव के प्रधान "वीर सिंह से हो गई. अरे रम्मू, तुम्हारी तो शहर में नौकरी लग गई, वह भी बैंक में, भई वाह.

"जिस ग्राम प्रधान के सामने पूरा ग्राम नतमस्तक होता है, रम्मू, मैं तुम्हारे विचारों के आगे नतमस्तक हो गया हूँ."

कैसे हो? बात करते-करते वह मुझे अपने घर ले गया.

"माँ की तबीयत खराब है. जल्दी ही ऑपरेशन करना पड़ेगा, इसलिए मैं गाँव आया हूँ. रुपयों की व्यवस्था करनी है. मैं बहुत परेशान हूँ, बहुत ही धीमे स्वर में मैंने उन्हें बताया. परेशान मत हो, तुम्हें कितने रुपयों की अवश्यकता हैं?" तपाक से प्रधान ने मुझसे पूछा, "लगभग दो लाख रुपयों की" मैं रुआँसा था. "पूरे गाँव को मालूम है कि तुम मां की कितनी सेवा करते हो. अब, जब तुम्हारी माँ के ऑपरेशन के लिए रुपयों की आवश्यकता है, ईश्वर तुम्हारे साथ है. समझ लो रुपयों की व्यवस्था हो गई. तुम जाकर शीघ्र ही माँ का ऑपरेशन कराओ. वह जल्दी ही स्वस्थ हो जाएगी."

प्रधान वीर सिंह मुझे पास बैठाकर समझाने लगे "देखो रम्मू मेरी बात ध्यान से सुनो तुम्हारी नौकरी इलाहाबाद में लग गई है. कुछ दिनों बाद तुम माँ को भी साथ ले आओगे यहां गाँव की राजनीति तो तुम जानते ही हो. यहां कई लोगों की नजरें तुम्हारे खेतों में लगी हुई हैं. इससे पहले वे लोग तुम्हारे खेतों को हथिया ले, तुम मुझे बेच दो. मेरे भाई का

कारोबार बढ़िया चल रहा है. यदि तुम भी अपने खेत मुझे बेच दो तो नहर तक के सारे खेत मेरे हो जाएंगे." प्रधान लगातार मुझे समझाता रहा "यदि तुम अपने खेत किसी भी किसान को बेचोगे तो मुश्किल से तुम्हें डेढ़-दो लाख रुपए ही मिल पाएंगे, लेकिन मैं तुम्हें उसके बदले पूरे पाँच लाख रुपए देने को तैयार हूँ, जिससे तुम मां का इलाज करा लेना, बाकी तीन लाख अपने बैंक में जमा कर लेना".

आशा की एक किरण तो जरूर नज़र आई लेकिन मैं पहले से ज्यादा परेशान हो गया, क्या मुझे मां के इलाज के लिए धरती मां का सौदा करना पड़ेगा? बिना कुछ कहे मैं प्रधान के घर से वापस आ गया. सुबह-सुबह मैं अपने खेत की मेंड़ पर आ बैठा, खेत में गेहूं की फसल उगी हुई थी. खेत के किनारे नहर थी जिसमें पानी बह रहा था. मेरे कानों में प्रधान वीर सिंह की आवाज गूंज रही थी. तुम अपने खेत मुझे बेच दो. बेचैन होकर खेत के किनारे-किनारे मैंने चक्कर लगाना शुरू कर दिया. आस पास के सारे खेत जिनको प्रधान ने खरीद लिया था देखकर मैं दंग रह गया, सारे खेत गहरे गड्ढों में परिवर्तित हो चुके थे, उन गड्ढों को भरने के लिए ईंटें बनाई जा रहीं थीं. ऐसा लग रहा था जैसे किसी मानव शरीर से उसका हृदय निकाल कर लहूलूहान उसे तड़पने के लिए छोड़ दिया गया हो. यदि मैंने अपने खेत वीर सिंह को बेच दिये तो कुछ दिनों बाद मेरे खेतों का यही हाल होगा, मुझसे देखा नहीं जा रहा था, मैं वहीं खेत की मेड़ में बैठ गया. गेहूं के पौधे सांस रोके हुए थे. बिना हिले-डुले चुपचाप खड़े हुए थे. जैसे अपने खेत में किसी कसाई को बेचने जा रहा था. तभी कुछ पौधों में हलचल हुई. मैंने झुककर देखा मेरी आखों से आंसू निकलकर पौधों में गिर रहे थे, इसलिए वे हिल रहे थे.

ईश्वर ने मुझे शक्ति प्रदान की. मैं किसान कुन्दन के घर पहुँच गया. बहुत देर समझाने के बाद मैंने अपने खेत उसे दो लाख रुपये में दे दिये. पर शर्त यह थी कि वह खेत का उपयोग सिर्फ फसल उगाने के लिए ही करेगा. वह कभी किसी को खेत नहीं बेचेगा. यदि ऐसी कोई नौबत आयी तो मुझे ही वापस बेचेगा. उसके घर से बाहर निकलते ही मुझे ऐसा लग रहा था जैसे मैंने कोई जंग जीत ली है. अगले दिन वीर सिंह के दो लठैत मुझे बुलाने आ गए. मैं वीर सिंह के घर पहुंचा. वहां पहुँच कर मैंने देखा कि वह गुस्से से तमतमा रहा है. मुझे देखते ही वीर सिंह ने पूछा. . . "रम्मू, सुना है तुमने खेत कुन्दन को बेच दिया, वह भी मात्र दो लाख रुपए में? मेरे मुँह से सिर्फ हाँ निकला. "मैं उसी खेत के तुम्हें पाँच लाख रुपए दे रहा था पर तुमने सिर्फ दो लाख रुपए में बेच दिया. यह बात मेरी समझ में नहीं आयी !" वीर सिंह ने आश्चर्य से कहा, "ठाकुर साहब, सच है कि मुझे रुपयों की सख्त आवश्यकता है. कल मैंने उन खेतों का हाल देखा जो आपने भट्टों के लिए

लिया है. चंद रुपये कमाने के लिए आपने उन खेतों को नष्ट ही नहीं किया बल्कि उन्हें मार डाला है. उन खेतों में आपकी वजह से कई पीढ़ियां फसल नहीं उगा पाएँगी." न जाने क्या-क्या मैं बोलता चला गया. "मुझे सिर्फ दो लाख रुपयों की आवश्यकता है जोकि कुन्दन ने मुझे दे दिए. तीन लाख रुपयों का कोई नुकसान नहीं कर सकता लेकिन तीन लाख गवां कर मैंने कितना कमा लिया, यह आपकी सोच से बाहर है." "क्या इस बात के लिए तुमने इतना बड़ा नुकसान कर डाला." वीर सिंह की आंखे खुली रह गई. "मैं गाँव सौदा करने नहीं, माँ के इलाज के लिए आया हूँ," कहकर मैं भावुक हो गया. मेरी आंखो से आंसू निकलने लगे.

"नहीं, मत रो." कहकर वीर सिंह ने मुझे गले से लगा लिया, "जिस ग्राम प्रधान के सामने पूरा ग्राम नतमस्तक होता है, रम्मू, मैं तुम्हारे विचारों के आगे नतमस्तक हो गया हूँ." माँ का इलाज कराने के बाद उन्हें मैं अपने साथ इलाहाबाद ले आया. वर्षों बाद समय काफी आगे निकल चुका था. माँ का स्वर्गवास हुए कई वर्ष बीत गए थे, परिवार में पत्नी और एक दस वर्ष का बेटा है. एक दिन बेटे ने "गाँव" पर निबंध लिखते हुए मुझसे कहा, "पापा मुझे गाँव कब दिखाओगे?" मुझे मेरे गाँव की याद आ गई. अगले महीने गर्मियों की छुट्टी में मैं अपने परिवार के साथ चंद्रपुर पहुँच गया.

खेत के रास्ते में पहले पुराने आम के पेड़ से सामना हुआ. उसके नीचे शीतल छाँव में मैं बेटे को गाँव के बारे में समझा रहा था कि कई पके आम हवा के झोंके के साथ नीचे गिर पड़े. बेटे के साथ मैं अपने खेत पहुँच गया. खेत से सटे विशालकाय गड्ढे जो वर्षों पहले देखे थे, उनको एक खूबसूरत तालाब का रूप दे दिया गया था, तालाब में चारों तरफ खूबसूरत पक्की सीढ़ियां बनी हुई थीं. चारों तरफ फलदार पेड़ लगे थे. उनके नीचे बैठने के लिए पक्की सुंदर बेंच बनी हुई थी, हैंडपंप से कुछ ग्रामवासी पानी पी रहे थे. यह दृश्य देखकर मैं अवाक रह गया. पता चला कि वीर सिंह मरने से पहले एक विशालकाय तालाब बनवाकर गाँव वालों को समर्पित कर गया था. वर्षा का जल संरक्षित होकर उस तालाब में इतना इकट्ठा हो जाता है कि पूरे साल गाँव वालों को पानी की कमी नहीं रहती. उसी तालाब के पानी से स्वर्गीय कुन्दन का बेटा सुंदर खेतों में लगी फसल की सिंचाई कर रहा था. बेटे को ऐसा गाँव, तालाब और खेत दिखा कर मेरा सीना गर्व से चौड़ा हो रहा था.

रमेश चन्द्र त्रिपाठी

■■■

निर्णय

अपने मिशन की सफलता एवं ब्रेल लिपि को समग्र साक्षरता अभियान का अंग बनाए जाने पर आप क्या कहेंगी?' पत्रकार ने अमिता से पूछा.

'मैं इसे एक शुरुआत के रूप में ही मानती हूँ, मेरी समझ से बहुत कुछ किया जाना अभी शेष है. ब्रेल लिपि हमारे बीच लगभग 200 वर्षों से है, फिर भी नेत्रहीन वर्ग को उसका उतना लाभ नहीं मिल सका जितना कि मिल जाना चाहिए था. आज तो ब्रेल लिपि को प्रौद्योगिकी के साथ जोड़ने के स्थान पर उसके उपयोग को हतोत्साहित करने का प्रयास किया जा रहा है. ऐसे में जबकि राष्ट्र संघ ने दृष्टिबाधित जन की पूर्ण साक्षरता के मानक के रूप में ब्रेल लिपि को आधार के रूप में स्वीकार किया है तो हमें इसमें और अधिक काम करने की आवश्यकता होगी.

'राष्ट्र संघ ने आपको अपना वैश्विक राजदूत बनाया है, जिसके पीछे आपकी जमीनी स्तर पर चलाई जा रही कार्य योजना का योगदान है. क्या आपको लगता है कि ब्रेल लिपि का उपयोग दृष्टिबाधितजन के अतिरिक्त भी कोई कर सकता है?'

'हाँ, वैज्ञानिकों द्वारा सुदूर अंतरिक्ष एवं ऐसी प्रयोगशालाओं में जहाँ प्रकाश का सीमित प्रयोग करना होता है, वहाँ ब्रेल लिपि द्वारा काम किया जाना प्रस्तावित है और कई वैज्ञानिक इस हेतु प्रशिक्षण भी प्राप्त कर रहे हैं.'

'राष्ट्र संघ द्वारा आपको अपने मिशन हेतु रु. 50 लाख की आर्थिक सहायता प्रदान की गई है, क्या करेंगी आप इतने पैसों का?'

'मेरी समझ में यह राशि बहुत कम है फिर भी हमारी योजना है कि ब्रेल पुस्तकों को प्रत्येक बालक तक तथा प्रत्येक ऐसे दृष्टिबाधित व्यक्ति तक पहुंचाना जिसे उनकी आवश्यकता है. देश में ब्रेल पुस्तकों का प्रकाशन बड़े पैमाने पर हो रहा है और कई स्थानों पर पुस्तकालय एवं वाचनालय भी खोले गये हैं, किंतु पाठकों की संख्या नहीं बढ़ रही है ऐसे में पाठकों तक पुस्तकों की पहुंच बनाने में यह धनराशि किसी सेतु का काम कर सकती है'

'जब प्रौद्योगिकी है तो ब्रेल ही क्यों? यह तो लिखने का एक पुराना तरीका है.'

'सच कहते हैं आप, जब आडियो विजुअल की व्यवस्था हो गई है तो फिर आखिर आप लोग छोटे-छोटे बच्चों को पेन-पेंसिल देकर अलग-अलग तरह की लेखन व्यवस्था क्यों सिखाते हैं? सभी बच्चों को टैब आदि देकर छुट्टी क्यों नहीं पा लेते?'

'अब तो किसी के मन में ब्रेल को लेकर कोई शंका नहीं रह गई है' पत्रकार ने यह कहकर इंटरव्यू समाप्त कर दिया.

अमिता का राष्ट्रीय चैनल तथा अन्य संचार माध्यमों पर लाइव प्रसारित हुआ यह लंबा साक्षात्कार उसके द्वारा विगत कई वर्षों की निःस्वार्थ सेवा एवं अथक परिश्रम का ही परिणाम था. आज जबकि राष्ट्र संघ द्वारा उसे "विश्व ब्रेल सम्मान" से सम्मानित किया गया और भारत सरकार ने अपने "समग्र साक्षरता" अभियान में ब्रेल को 'अनिवार्य' रूप से लागू कर दिया था, तब शासकीय स्तर पर इसका प्रचार-प्रसार करने के उद्देश्य से यह साक्षात्कार लिया गया.

ऑनलाइन साक्षात्कार पूर्ण होने पर जब अमिता ने अपना मोबाइल फोन हाथ में लिया तो वह सहसा बज उठा, उसने देखा यह तो सुबोध की कॉल थी.

"हाँ, सुबोध बोलो, क्या बात है? बहुत दिनों बाद आज तुमने फोन कैसे किया?" एक साँस

राष्ट्र संघ द्वारा उसे "विश्व ब्रेल सम्मान" से सम्मानित किया गया और भारत सरकार ने अपने "समग्र साक्षरता" अभियान में ब्रेल को 'अनिवार्य' रूप से लागू कर दिया था.

में सब कुछ कह गई अमिता.

"सबसे पहले तो तुम्हें बधाई कि तुम एक विश्व स्तर की हस्ती बन गई हो."

"तुम्हें भी बधाई सुबोध कि तुम उस हस्ती के आज भी मित्र बने हुए हो." यह कहकर अमिता खिलखिलाकर हँस पड़ी.

"दरअसल माँ-पिताजी भी तुम्हें बधाई दे रहे हैं और वे तुमसे कुछ बात भी करना चाहते हैं."

"बधाई देने हेतु उन्हें धन्यवाद कहना, मैं उनसे कल बात करूँगी."

"ठीक है, जैसी तुम्हारी मर्जी, गुड नाइट." कहकर सुबोध ने कॉल काट दी.

अमिता अपने सैलफोन को एक ओर रखकर, लंबी साँस भरकर बिस्तर पर जा लेटी. विभिन्न सम्मान समारोहों और प्रदेश एवं देश के प्रमुख लोगों से चर्चा-परिचर्चा ने अंतर्मुखी अमिता को मानसिक रूप से बहुत थका दिया था. अब उसे अपने लिए कुछ समय मिला तो वह स्मृति के सागर में डूबती-उतरती चली गई.

उसे याद आए वे दिन जब उसे उसकी माँ शारदा देवी हाथ पकड़कर मंदिर ले जाया करती; घर में खाना बनाते-बनाते उसे गिनती-पहाड़े सिखाती; खेल-खेल में बारहखड़ी सिखाती. अमिता के पिता का देहांत उसके जन्म के कुछ माह पश्चात् ही हो गया था, अतः संयुक्त परिवार में रहने वाले ताऊ एवं चाचा ने उस दृष्टिहीन कन्या को अभिशाप ही समझा, आखिर उसके पिता उस घर में सबसे अधिक कमाई जो करते थे. शारदा देवी को अपने पति की मृत्यु के पश्चात् घर की रसोई से लेकर झाड़ू, पोंछे, बर्तन साफ करने जैसे सारे कामों की जिम्मेदारी सौंप दी गई. उनके मायके में न तो संपन्नता थी और न ही उनके प्रति सहानुभूति. अतः उनको वापस मायके बुलाने या उनके प्रति किसी प्रकार के दायित्व निर्वहन के विषय में उनके भाईयों ने कोई बात ही नहीं की. इसे शारदा ने अपनी नियति मानकर स्वीकार कर लिया.

अमिता जब कुछ बड़ी हुई तो शारदा ने उसे विशेष विद्यालय में प्रवेश दिलवाने हेतु आग्रह किया, जिसे अमिता के ताऊ ने यह कहकर ठुकरा दिया कि विशेष विद्यालय तो दूसरे शहर में है और फिर वे नहीं चाहते कि उनकी लाडली बच्ची घर से दूर जाकर इतनी कम उम्र में कठिनाइयों का सामना करे. अनाथ बच्चों के होस्टलों से जुड़े हुए, कई अखबारी भयावह किस्सों के उदाहरण उन्होंने दे डाले, जिससे शारदा मन मसोसकर रह गई. ऐसी बातों के आगे उसका कोई तर्क चल न सका. किसी तरह उसने ब्रेल लिपि सीखी तथा दृष्टिबाधित बच्चों को पढ़ाने हेतु चलाया जाने वाला आधार पाठ्यक्रम कर लिया. अपने सीमित ज्ञान के माध्यम से शारदा अमिता के लिए ज्ञान के वातायन खोलने लगी. घर पर रहकर वह जो और जितना कुछ पढ़ा सकती थी, उसने अमिता को सच्ची लगन के साथ पढ़ाया.

कहते हैं न कि सच्ची श्रद्धा से किये गए शांति पूर्ण कार्य की गूँज हजारों मील तक जाती है. अमिता के पढ़ने-लिखने व ज्ञानवान होने की बात घर व आस-पड़ोस के बच्चों के माध्यम से अमिता के मोहल्ले में ही रहने वाली स्कूल अध्यापिका ज्योति मैडम तक पहुंच गई. ज्योति मैडम सामाजिक प्रकृति की एक मिलनसार महिला थीं, वे अमिता के घर पहुंची और अमिता की जितनी प्रशंसा सुनी थी उससे कहीं अधिक प्रतिभा उसमें पाई. ताऊजी से अनुमति लेकर ज्योति मैडम ने उसका कक्षा दसवीं के लिए प्राइवेट फार्म भी भरवा दिया. वे अमिता को अपने घर पर बुलाती और वहाँ आने वाले उनके ट्यूशन विद्यार्थियों के साथ उसे भी पढ़ाती.

ज्योति मैडम उसका उदाहरण देकर अन्य बच्चों को उससे प्रेरणा लेने के लिए खूब प्रोत्साहित किया करती थी. एक बार जब वे अंग्रेजी का कोई उत्तर लिखवा रही थीं, तभी अचानक बिजली चली गई. मैडम का बोलना

बंद होते ही ब्रेल में नोट्स बना रही अमिता ने कहा, "मैडम आगे बताइये न, क्या लिखना है." इस पर मैडम अपने चिर-परिचित अंदाज में ठहाका मारकर हँस पड़ी. "तू तो लिख लेगी, बेटा, पर इन लोगों का क्या होगा जो बाहरी प्रकाश के अभाव में नेत्रहीन हो गए हैं!"'

ज्योति मैडम के घर पर ही उसे सुबोध मिला. वह और उसकी कक्षा में पढ़ने वाले विद्यार्थी अमिता से बहुत प्रभावित हुए. कक्षा दसवीं में अमिता ने प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होकर "नगर गौरव" का सम्मान पाया. जब उसने बारहवीं की परीक्षा उत्तीर्ण की ही थी कि माँ का साया भी उसके सिर से उठ गया. घर में रहकर कठोर परिश्रम करने तथा समुचित देखभाल के अभाव व परिवारजन द्वारा की जा रही उपेक्षा के चलते शारदा देवी को छोटी-छोटी बीमारियों ने समय से पहले ही काल का ग्रास बना दिया. अपनी माँ से साहस का पाठ पढ़, अमिता ने छोटे बच्चों को ट्यूशन पढ़ाना शुरू किया, क्योंकि ऐसा न करने पर उसका स्वयं पढ़ पाना संभव न था.

सुबोध जो कि शहर के एक बड़े व्यापारी का बेटा था, अमिता की जीवटता में उसका सहयोगी बना. वह ट्यूशन के लिए बच्चों को जुटाने में उसकी सहायता किया करता. इतना ही नहीं जब अमिता ने लोक सेवा आयोग की परीक्षाओं की तैयारी करने की इच्छा जताई तो सुबोध ने उसका भरपूर सहयोग किया. युवा होते दोनों हृदयों के बीच कुछ ऐसा चल रहा था जो कि सहज एवं स्वाभाविक था. उन दोनों को जो भी अनुभव हो रहा था, वे उनके होठों पर न आ सका. स्नातक की डिग्री पूर्ण करते ही लगनशील अमिता ने लोक सेवा आयोग की परीक्षा दी और उसे भी उत्तीर्ण कर लिया. हालाँकि परिवार के लोग उसकी इस सफलता से प्रसन्न नहीं थे, किंतु उन्हें इस सफलता के पीछे अपने कई उल्लू सीधे होते दिखाई पड़े. सुबोध साक्षात्कार से लेकर नियुक्ति तक उसके साथ रहा. उन दोनों के इस साथ पर कस्बाई सोच की कुदृष्टि पड़ते देर न लगी. छोटे शहरों का यही दुर्भाग्य है कि यहाँ के बाशिंदे औरों की व्यक्तिगत बातों में निरर्थक रुचि लेते हैं और अच्छे खासे संबंधों को तबाह कर दिया करते हैं. उन दोनों के पवित्र रिश्ते पर बाजारी गप्पों ने ग्रहण लगा दिया. जब सुबोध ने अपने माता-पिता से अमिता की प्रशंसा की और उससे विवाह करने का प्रस्ताव रखा तो वे न केवल भड़क गए, बल्कि ऐसा होने पर जान देने तक की धमकी देने लगे. वे इतने पर ही न रुके, बल्कि अपनी धमकी में वे यहाँ तक पहुंच गए कि यदि सुबोध ने अमिता से मिलने की कोशिश की तो अमिता का भी कुछ अनिष्ट हो सकता है. इस बाद वाली बात ने सुबोध को अंदर तक दहला दिया. उसने अब अमिता से मिलना और उसके फोन कॉल रिसीव करना बंद कर दिया. साथ ही अपने माता-पिता द्वारा लाए

गए सभी विवाह प्रस्तावों को वह अस्वीकार करता चला गया.

दूसरी ओर, अमिता ने अपनी कर्मशीलता से जीवन की राहों को आसान बनाया. वह अपने कैरियर में उन्नति तो कर ही रही थी, अपने खाली समय को पूरे उत्साह एवं ऊर्जा के साथ अपने क्षेत्र के ग्रामीण दृष्टिबाधित एवं अन्य विकलांग बाल-बालिकाओं के विकास के लिए दे रही थी. प्रदेश के निःशक्तजन कल्याण विभाग में अपनी पदस्थापना के दौरान उसने राष्ट्र संघ के कई प्रोजेक्टों को जमीनी स्तर पर संचालित करने में अपना भरपूर सहयोग प्रदान किया. यह कस्बाई लड़की अब राष्ट्रीय स्तर का व्यक्तित्व बन चुकी थी.

जहाँ उसकी बड़ी सफलता ने उसे अपने अतीत में झाँकने के लिए विवश कर दिया, वहीं अनायास आए सुबोध के इस फोन कॉल ने उसे सोचने पर विवश किया कि इतना सब कुछ करने पर भी उसके पास एक कमी है. वह स्वयं को अधूरा सा अनुभव करने लगी. उसे अपने जीवन में एक मधुमास की कल्पना अच्छी लगी. साथ ही उसे बसंत के बाद आने वाले पतझड़ की निष्ठुर ऋतु भी दिखाई देने लगी. खट्टी-मीठी कल्पना मिश्रित थकान ने उसे एक गहरी नींद सुला दिया.

देर सुबह उसकी नींद मोबाइल की आवाज से ही खुली. देखा तो सुबोध का फोन था.

“हाँ सुबोध, गुड मॉर्निंग!”

“अमिता माँ तुम से बात करना चाहती हैं, करोगी न तुम बात!”

“लेकिन सुबोध, मैं उनसे बात नहीं करना चाहती. शायद वे मुझे मिले सम्मान से प्रभावित हैं और चूँकि तुमने भी अब तक विवाह नहीं किया है, अतः संभव है कि वे हमारे विवाह की चर्चा करें, किंतु मैं जीवनपथ पर बहुत आगे निकल आई हूँ. हो सकता है कि घर बसाकर मैं सुखी हो जाऊँ, परंतु उनके सुख का क्या होगा, जिसके लिए मैं कृतसंकल्पित हूँ! फिर यह आवश्यक नहीं है कि जो लोग आज मुझे देखकर खुश हो रहे हैं, वे कल भी प्रसन्न रहेंगे ही..... लेकिन वे बच्चे और युवा जिनका भविष्य मेरे तुच्छ प्रयासों से सुधर सकता है, उनके लिए तो संभवतः मैं प्रसन्नता का ही कारण रहूँगी. इस लिए सुबोध मैं तुमसे क्षमा चाहती हूँ कि तुम्हारे प्रस्ताव को स्वीकार नहीं कर सकती.” इतना कहकर उसने फोन बंद कर दिया.

अर्पित जैन

■■■

राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार से यूनियन बैंक ऑफ इंडिया को प्राप्त कीर्ति पुरस्कार (पूर्व में इंदिरा गांधी राजभाषा पुरस्कार)

क्र	वर्ष	पुरस्कार
1	2001-2002	प्रथम
2	2002-2003	द्वितीय
3	2003-2004	द्वितीय
4	2004-2005	प्रोत्साहन
5	2007-2008	प्रोत्साहन
6	2008-2009	प्रथम
7	2009-2010	द्वितीय
8	2010-2011	द्वितीय
9	2012-2013	द्वितीय
10	2013-2014	प्रथम
11	2014-2015	द्वितीय
12	2020-2021	तृतीय

बैंक की कार्पोरेट गृह पत्रिकाओं को प्राप्त पुरस्कार

भारत सरकार

- वर्ष 2012-13 हेतु यूनियन धारा को इंदिरा गांधी पुरस्कार के अंतर्गत द्वितीय पुरस्कार
- वर्ष 2014-15 हेतु यूनियन सृजन को कीर्ति पुरस्कार के अंतर्गत द्वितीय पुरस्कार
- वर्ष 2018-19 हेतु यूनियन सृजन को कीर्ति पुरस्कार के अंतर्गत द्वितीय पुरस्कार

भारतीय रिज़र्व बैंक –

(द्विभाषी गृह पत्रिका श्रेणी में यूनियन धारा को)

- 2000-01 प्रथम पुरस्कार – पहली बार
- 2001-02 चतुर्थ पुरस्कार
- 2002-03 चतुर्थ पुरस्कार
- 2003-04 द्वितीय पुरस्कार
- 2007-08 तृतीय पुरस्कार
- 2008-09 तृतीय पुरस्कार
- 2009-10 चतुर्थ पुरस्कार
- 2010-11 तृतीय पुरस्कार
- 2011-12 द्वितीय पुरस्कार

राष्ट्रीय स्तर की प्रतिष्ठित निजी संस्थाएं

- एसोसिएशन ऑफ बिज़नेस कम्यूनिकेटर्स् ऑफ इंडिया (एबीसीआई)
- पब्लिक रिलेशन्स काउंसिल ऑफ इंडिया (पीआरसीआई)
- आशीर्वाद संगठन, मुंबई
- शैलजा नायर फाउंडेशन, मुंबई
- मायाराम सुरजन फाउंडेशन, मुंबई
- प्रेस क्लब, त्रिवेंद्रम
- अखिल भारत राष्ट्रभाषा विकास संगठन, गाज़ियाबाद
- राजभाषा किरण, मुंबई

यूनियन बैंक ऑफ इंडिया
अच्छे लोग, अच्छा बैंक

Union Bank of India
Good people to bank with

यूनियन बैंक राजभाषा मिशन

- बैंक के सभी दैनिक कार्य हिंदी में करना तथा सभी को प्रेम एवं सद्भावना से हिंदी में कार्य करने हेतु प्रेरित करना।
- भारत सरकार की राजभाषा नीति का शत प्रतिशत अनुपालन सुनिश्चित करना।
- यूनीकोड के माध्यम से बैंक की सभी शाखाओं में हिंदी के प्रयोग में निरंतर वृद्धि करना।
- नवीनतम प्रौद्योगिकी को राजभाषा एवं क्षेत्रीय भाषाओं से जोड़ कर बैंकिंग को जन-उन्मुख बनाते हुए सर्वश्रेष्ठ एवं अनुकरणीय ग्राहक सेवा प्रदान करना।
- राजभाषा कार्यान्वयन संबंधी सभी लक्ष्यों को पार करना।

यूनियन बैंक राजभाषा प्रतिज्ञा

"हम, यूनियनाइट्स, यह प्रतिज्ञा करते हैं कि हम भारत सरकार की राजभाषा नीति के अनुपालन हेतु निरंतर कार्य करेंगे। हम स्वयं भी हिंदी में अधिकाधिक कार्य करेंगे तथा अपने साथियों को भी हिंदी में कार्य करने हेतु प्रेरित करेंगे। हम राजभाषा में काम करके गर्व का अनुभव करेंगे। हम प्रतिज्ञा करते हैं कि हम राजभाषा अधिनियम एवं नियम तथा राजभाषा हिंदी संबंधी वार्षिक कार्यक्रम में निर्धारित सभी लक्ष्यों को पार करके हिंदी के प्रयोग में अपने बैंक को अनुकरणीय बनाएंगे।"

हमारा ध्येय

हिंदी में बैंकिंग-बैंकिंग में हिंदी

दिनांक 23.10.2024 को संसदीय राजभाषा समिति की
तीसरी उप समिति द्वारा क्षेत्रीय कार्यालय, हैदराबाद-कोटी का निरीक्षण

दिनांक 16.01.2025 को संसदीय राजभाषा समिति की
तीसरी उप समिति द्वारा क्षेत्रीय कार्यालय, मुंबई- दक्षिण का निरीक्षण